SHUTSRANA

जनवरी-मार्च २००३



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRŚWANĀTHA VIDYĀPĪŢHA, VARANASI

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष ५४, अंक १-३, जनवरी-मार्च २००३

प्रधान-सम्पादक प्रो० सागरमल जैन

सम्पादक **डॉ० शिवप्रसाद**

प्रकाशक

पार्श्वनाथ विद्यापीठ,

आई,टी,आई, मार्ग, करौंदी पो,ऑ, — बी,एच,यू,

वाराणसी-२२१००५ (उ.प्र.)

e-mail: parshwanathvidyapeeth@rediffmail.com

दूरभाष : ०५४२-२५७५५२१, २५७००४६

ISSN-0972-1002

वर्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए : रु॰ १५०.००

व्यक्तियों के लिए : रु. १००.००

इस अंक का मूल्य : रुः २५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए : रु. १०००.०० व्यक्तियों के लिए : रु. ५००.००

नोट : सदस्यता शुल्क का चेक या ड्राफ्ट केवल पार्श्वनाथ विद्यापीठ के नाम ही भेंजे।

सम्पादकीय

श्रमण जनवरी-मार्च २००३ का अंक पाठकों के समक्ष उपस्थित है। हमारा संकल्प है कि श्रमण की पहचान एक प्रामाणिक शोधपित्रका के रूप में हो अत: हमारा यही प्रयास रहता है कि हम इसमें अच्छे आलेख प्रकाशित करें। हम अपने इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुए अथवा हो रहे हैं, यह पाठक स्वयं देखें और हमें इसमें हो रही त्रुटियों से अवश्य अवगत कराने की कृपा करें, ऐसी प्रार्थना है।

सम्माननीय लेखकों से भी निवेदन है कि वे हमें जैन धर्म-दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व, कला एवं भाषा-साहित्य सम्बन्धी अपने अप्रकाशित शोध आलेख प्रकाशनार्थ प्रेषित करें।

सम्पादक

श्लीपा जनवरी-मार्च 2003

सम्पादकीय विषयसूची

हिन्दी खण्ड

9.	जन साहत्य आर संस्कृति म वाराणसा मण्डल		
		– डॉ० कमलेश कुमार जैन	9-90
₹.	जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैन		99-29
	तुलनात्मक अध्ययन	– डॉ० विजय कुमार झा	
₹.	स्थानकवासी सम्प्रदाय के छोटे पृथ्वीचन्द्रउ	ी महाराज की	30-85
	परम्परा का इतिहास	– डॉ० विजय कुमार	
છ .	धर्म और धर्मान्धता	- डॉ० वशिष्ठ नारायण सिन्हा	83-40
4.	घूलियाँ से प्राप्त शीतलनाथ की विशिष्ट प्रा	तिमा 	49-48
	-	– प्रो० सागरमल जैन	
Ę.	खरतरगच्छ जिनभद्रसूरि शाखा का इतिहा	स	44-08
	.	– शिव प्रसाद	
	अंग्रेजी :	खण्ड	
7.	Catalogues of Jaina Manuscripts	Dr. Ashok Kumar Singh	77-112
5.	विद्यापीठ के प्रांगण में		993-99&
3.	जैन जगत्		990-9२४
90.	साहित्य-सत्कार		924-933

जैन-साहित्य और संस्कृति में वाराणसी मण्डल

डॉ० कमलेशकुमार जैन

पणमह चउवीसजिणे तित्थयरे तत्थ भरहखेत्तम्म। भव्वाणं भवरुक्खं छिंदंते णाणपरसूहिं।।

जैनधर्म अत्यन्त प्राचीन है। इसकी जड़ें प्रागैतिहासिक काल से लेकर अद्यावधि जनजीवन में समाहित हैं। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी-काल में जैनधर्म के प्रवर्तक जिन महापुरुषों ने अपने जन्म से इस भारतभूमि को अलङ्कृत किया है, उनकी संख्या चौबीस है। ये सभी महापुरुष अपने-अपने समय में तीर्थ के प्रवर्तक होने के कारण तीर्थङ्कर कहलाते हैं और वे जीवमात्र को कल्याणकारी उपदेश देते हुए अन्त में अपने सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अपने इस अन्तिम भव में वे दिव्य औदारिक शरीर के धारक होते हैं, अतः इन सभी का शारीरिक सौन्दर्य अपूर्व होता है। अवगाहना और रङ्ग में भी कहीं-कहीं समानता पायी जाती है; किन्तु इन के दाहिने पैर के अङ्गूठे में एक विशेष चिह्न होता है, जिसके कारण प्रत्येक तीर्थङ्कर की पृथक्-पृथक् पहचान होती है।

इन तीर्थङ्करों में ऋषभदेव प्रथम हैं, जिनका उल्लेख श्रीमद्भागवतमहापुराण में विस्तार से किया गया है। हिन्दू पुराणों में जिन चौबीस अवतारों की चर्चा की गयी है उनमें आठवें अवतार के रूप में उक्त भगवान् ऋषभदेव को स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवतमहापुराण में उनकी कठिन तपस्या का भी उल्लेख है। इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

वर्तमान-काल में तीर्थङ्कर ऋषभदेव से लेकर तीर्थङ्कर महावीरपर्यन्त जैनधर्म के प्रवर्तक जो चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं उनके नाम हैं— ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमितनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्युनाथ, अरहनाथ, मिल्लनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, निमनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी। प्रत्येक तीर्थङ्कर की पहचान के लिए उनके चिह्न क्रमशः इस प्रकार हैं— बैल, गज, अश्च, बन्दर, चकवा, कमल, नन्धावर्त, अर्द्धचन्द्र, मगर, स्वस्तिक,

रीडर एवं अध्यक्ष, जैनबौद्धदर्शन विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

२ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

गैंडा, भैंसा, शूकर, सेही, वज्र, हरिण, छाग, तगरकुसुम (मत्स्य), कलश, कूर्म, उत्पल (नीलकमल), शङ्ख, सर्प और सिंह।^६

उक्त में से चार तीर्थङ्करों— सातवें सुपार्श्वनाथ, आठवें चन्द्रप्रभ, ग्यारहवें श्रेयांसनाथ और तेइसवें पार्श्वनाथ का सम्बन्ध काशी और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से है।

सुपार्श्वनाथ— भगवान् सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी के भद्रवनी क्षेत्र में हुआ था, जो सम्प्रति भदैनी मुहल्ले के नाम से जाना जाता है। इनके पिता का नाम महाराजा सुप्रतिष्ठ और माता का नाम पृथिवी देवी था। ये ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे।

चन्द्रप्रभ— भगवान् चन्द्रप्रभ का जन्म चन्द्रपुरी में हुआ था, जो वाराणसी से लगभग २५ किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा में गङ्गा नदी के किनारे सम्प्रति चन्द्रावती के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मीमती (लक्ष्मणा) था। ये पौष कृष्णा एकादशी को अनुराधा नक्षत्र में पैदा हुए थे।

श्रेयांसनाथ— भगवान् श्रेयांसनाथ का जन्म सिंहपुर या सिंहपुरी (वर्तमान सारनाथ) में हुआ था। इनके पिता का नाम विष्णु नरेन्द्र और माता का नाम वेणुदेवी था। ये फाल्गुन शुक्ला एकादशी को श्रवण नक्षत्र में पैदा हुए थे।

पार्श्वनाथ— भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी के भेलूपुर क्षेत्र में हुआ था। इनके पिता का नाम महाराजा अश्वसेन और माता का नाम वर्मिला (वामादेवी) था। ये पौष कृष्णा एकादशी को विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे। १०

उपर्युक्त चार तीर्थङ्करों में से सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ एवं श्रेयांसनाथ— ये तीन प्रागैतिहासिक काल के हैं, जबिक भगवान् पार्श्वनाथ ऐतिहासिक महापुरुष हैं।^{११}

काशी जनपद में जन्मे उक्त चार तीर्श्रङ्करों में से ग्यारहवें भगवान् श्रेयांसनाथ का सम्बन्ध सिंहपुर अथवा सिंहपुरी से है, जो वर्तमान में सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। विद्वानों के अनुसार सारनाथ नाम श्रेयांसनाथ से बिगड़कर बना है।^{१२}

सम्प्रति सारनाथ विश्व पटल पर एक प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ के रूप में जाना जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध बोधि-प्राप्ति के पश्चात् बोधगया से भ्रमण करते हुए अपने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं की खोज में सारनाथ स्थित ऋषिपत्तनमृगदाव में आये थे और यहीं कोण्डञ्ज, बप्प, भिद्दय, महानाम और अस्सिज— इन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को अपना प्रथम उपदेश दिया था; किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जैन-ग्रन्थों के अनुसार महात्मा बुद्ध का जैनधर्म से न केवल निकट का सम्बन्ध रहा है, अपितु वे वाराणसी के राजकुल में जन्मे ऐतिहासिक महापुरुष भगवान् पार्श्वनाथ, जो जैनधर्म

के तेइसवें तीर्थङ्कर हैं, की परम्परा में अपने प्रारम्भिक-काल में दीक्षित भी हुए थे।

आठवीं शती के दिगम्बराचार्य देवसेन के अभिमतानुसार महात्मा बुद्ध प्रारम्भ में जैन थे। जैनाचार्य पिहितास्रव ने सरयू नदी के तट पर अवस्थित पलाश नामक नगर में पार्श्व के संघ में उन्हें दीक्षा दी थी और उनका नाम बुद्धकीर्ति रखा था। दर्शनसार में उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो। पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्डकित्ति मुणी।। १३

इस तथ्य की पुष्टि मिज्झमिनिकाय के सीहनादसुत्त में उल्लिखित महात्मा बुद्ध की कठोर तपश्चर्या से भी होती है। बुद्ध स्वयं कहते है कि— "मैं वस्नरहित रहा, मैंने आहार अपने हाथों से किया। न लाया हुआ भोजन किया, न अपने उद्देश्य से बना हुआ लिया, न निमन्त्रण से जाकर भोजन किया, न बर्तन से खाया, न थाली में खाया, न घर की ड्योढ़ी में खाया, न खिड़की से लिया, न दो आदिमयों को एक साथ खाते हुए स्थान से लिया, न भोग करने वाली से लिया, न मलिन स्थान से लिया, न वहाँ से लिया जहाँ कुत्ता पास खड़ा था, न वहाँ से जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। न मछली, न माँस, न मदिरा, न सड़ा मांड खाया, न तुस का मैला पानी पिया। मैंने एक घर से भोजन किया, सो भी एक ग्रास लिया या मैंने दो घर से भोजन लिया सो दो ग्रास लिए। इस तरह मैंने सात घरों से लिया, सो भी सात ग्रास, एक घर से एक ग्रास लिया। मैंने एक दिन में एक बार, कभी दो दिन में एक बार, कभी सात दिन में एक बार भोजन लिया। कभी पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया। मैंने मस्तक, दाढ़ी व मुछों के केशलोंच किये। इस केशलोंच की क्रिया को जारी रखा। मैं एक बूंद पानी पर भी दयावान् था। क्षुद्र प्राणी की भी हिंसा मुझसे न हो जावे, ऐसा सावधान था। इस तरह कभी तप्तायमान, कभी शीत को सहता हुआ भयानक वन में नग्न रहता था। मृनि अवस्था में ध्यान में लीन रहता था।'''र

महात्मा बुद्ध की उक्त दुष्करचर्या से उनके प्रारम्भ में जैन मुनि होने की पुष्टि होती है, क्योंकि नग्नत्व, केशलोंच और दिन में एक बार भोजन आदि जैनमुनि के आचार से सम्बन्धित क्रियायें हैं, जो आज भी व्यवहार में देखी जा सकती हैं और जैन-साहित्य में तो इन सबका प्रभूत मात्रा में उल्लेख है ही।

तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बद्ध जैन मुनियों का काशी जनपद और उसके आस-पास के क्षेत्रों में निरन्तर विहार होता था, अत: श्रेयांसनाथ की जन्मस्थली सिंहपुर जैनमुनियों से अछूती रही हो, यह सम्भव नहीं है और यही कारण है कि बोधि-प्राप्ति के पश्चात् महात्मा बुद्ध सुदूरवर्ती क्षेत्र बोधगया से अपने शिष्यों की खोज में सर्वप्रथम सीधे सारनाथ आये थे, क्योंकि उनके मन में कदाचित् यह आशङ्का रही

होगी कि कहीं किसी पार्श्वानुयायी जैनमुनि से वे प्रभावित न हो जायें। पूर्वोल्लेखों के अनुसार महात्मा बुद्ध पूर्व में स्वयं जैनधर्म में दीक्षित थे, अत: त्यक्त धर्म के प्रति उनके मन में यह आशङ्का निराधार नहीं कही जा सकती है।

तीर्थङ्कर महावीर और महात्मा बुद्ध— ये दोनों समकालीन थे। इनके शिष्यों में परस्पर विवाद भी होता रहता था। अङ्गुत्तरिनकाय की अट्ठकथा के अनुसार गौतम बुद्ध के चाचा 'वप्प' निर्यन्थ श्रावक थे^{१५} और न्यग्रोधाराम में उनके साथ बुद्ध का संवाद भी हुआ था।^{१६}

इस प्रकार हम देखते हैं कि काशी नगरी और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र सिंहपुर (वर्तमान सारनाथ) का जैनधर्म से निकट का सम्बन्ध रहा है। भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुर है, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं होना चाहिए, क्योंकि जैन वाङ्मय में जितने भी प्राचीन एवं अर्वाचीन सन्दर्भ मिले हैं वे सभी सिंहपुर को ही भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि स्वीकार करते हैं।

आचार्य यतिवृषभ (ई.सन् १७६ के आस-पास) ने अपनी तिलोयपण्णत्ती, '' आचार्य शीलाङ्क (ईसा की नवमी शती) ने अपने चउप्पन्नमहापुरिसचिर्यं, '' आचार्य जिनसेन 'प्रथम' (ई॰ सन् की आठवीं शती का उत्तरार्द्ध) ने अपने हरिवंशपुराण, '' आचार्य जिनसेन 'द्वितीय' (ईसा की नवमी शती) ने अपने आदिपुराण, '' आचार्य गुणभद्र (ई० सन् ८९८ अर्थात् ईसा की नवमी शती का अन्तिम चरण) ने अपने उत्तरपुराण' और कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि (ईसा की बारहवीं शती) ने अपने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचिरत महाकाट्य' में सिंहपुर, सिंहपुरी अथवा सिंघपुरी का उल्लेख किया है तथा उसे भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि माना है।

पं० बलभद्र जैन की मान्यता है कि सारनाथ स्थित धम्मेक स्तूप भगवान् श्रेयांसनाथ की स्मृति में सम्राट् अशोक के पौत्र सम्राट् सम्प्रति ने बनवाया था। रहे

सम्राट् अशोक बौद्धधर्मानुयायी था, किन्तु उनका पौत्र सम्राट् सम्प्रति जैनधर्मानुयायी था। १४ अशोक का पुत्र कुणाल अपनी सौतेली माता के षड्यन्त्र के कारण अन्धा हो गया था, अतः स्वयं राजा होने में असमर्थ कुणाल ने अपने बेटे सम्प्रति के लिए अपने पिता सम्राट् अशोक से राज्य की याचना की थी।

प्रपौत्रश्चन्द्रगुप्तस्य बिन्दुसारस्य नप्तृकः। एषोऽशोकश्चियः सूनुरन्धो याचति काकणीम्।। १५

सम्प्रति कुणाल का पुत्र था, यह बात बौद्ध-ग्रन्थ **दिव्यावदान** में भी कही गयी है।^{२६}

डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री की तो यह भी मान्यता है कि वर्तमान में जो शिलालेख

Ų

या स्तूप आदि सम्राट् अशोक के नाम से उपलब्ध हैं, उनमें से कुछ को छोड़कर शेष सभी के निर्माता सम्राट् सम्प्रति हैं। रे॰

वर्तमान में सारनाथ में एक चतुर्मुखी सिंहस्तम्भ उपलब्ध है, जिसके शीर्ष पर चारों दिशाओं में चार सिंह अङ्कित हैं। सिंहों के निचले भाग में चारों ओर बैल, हाथी, दौड़ता हुआ घोड़ा और अर्धसिंह के चिह्न हैं। साथ ही घोड़े और बैल के मध्य में चौबीस आरों वाला चक्र भी अङ्कित है। इन प्रतीकों के सन्दर्भ में अनेक कला-मर्मज्ञों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं, जिनमें श्री बेल, डॉ० ब्लाख, डॉ० फोगेल, रायबहादुर दयाराम साहनी और डॉ० बी०मजूमदार प्रमुख हैं।

जहाँ श्री बेल इन्हें अनोत्तत सरोवर के चारों किनारों पर रहने वाले पशुओं का प्रतीक मानते हैं, वहीं श्री साहनी इनमें बौद्धधर्म-ग्रन्थों के अनोत्तत सर की छाया देखते हैं। डॉ० ब्लाख के अनुसार ये चारों पशु इन्द्र, शिव, सूर्य और दुर्गा के प्रतीक हैं, जो महात्मा बुद्ध के शरणागत हुए थे। डॉ० फोगेल इन पशुओं को केवल आलङ्कारिक मानते हैं और डॉ० बी०मजूमदार चारों पशुओं को बुद्ध के जीवन की मुख्य घटनाओं के लाक्षणिक रूप प्रतिपादित करते हैं। उनका कहना है कि हाथी गर्भप्रवेश का, वृषभ उनकी जन्मराशि का, दौड़ता घोड़ा उनके महाभिनिष्क्रमण का और सिंह उनके शाक्य सिंह होने का प्रतीक हैं। चौबीस अर चौबीस बुद्ध प्रत्ययों के प्रतीक हैं। मूर्धस्थित चारों सिंह शायद शाक्य सिंह के महान् विक्रम की चारों दिशाओं में बड़ाई उद्घोषित करते हुए बौद्ध भिक्षुओं के प्रतीक हैं।

उपर्युक्त विद्वानों के सभी मत उनकी अपनी-अपनी कल्पना पर आधारित हैं।

जैनधर्म में चौबीस तीर्थङ्करों/महापुरुषों की विशेष मान्यता है। उन्हीं की अर्चा-पूजा जैनधर्म की पूजा-पद्धित का प्रमुख आधार है, जो काफी प्राचीन है। उन तीर्थङ्करों में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव, जिनका उल्लेख वैदिक परम्परा के महान् धर्मग्रन्थ श्रीमद्भागवत- महापुराण के पञ्चम स्कन्ध में किया गया है और अपने भगवद् अवतारों में अष्टम अवतार के रूप में भी स्वीकार किया है, का चिह्न वृषभ है। द्वितीय तीर्थङ्कर अजितनाथ का चिह्न हाथी है। तृतीय तीर्थङ्कर सम्भवनाथ का चिह्न घोड़ा है और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का चिह्न सिंह है। साथ ही उसमें पाये जाने वाला चौबीस अरों वाला चक्र चौबीस तीर्थङ्करों का प्रतीक हो सकता है। जब सम्पूर्ण विवेचन का आधार केवल कल्पनाजन्य हो तब जैन प्रतीकों की सम्भावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जिस प्रकार अन्य विविध कल्पनाओं/सम्भावनाओं का उक्त सिंहस्तम्भ से क्लिष्ट कल्पना करके सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वैसे ही जैनधर्म के प्रतीकों का उक्त सिंहस्तम्भ से निकट का सम्बन्ध स्थापित होता है। अत: इन तथ्यों पर भी कलाविशारदों को गहराई से चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि

डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री का स्पष्ट अभिमत है कि जिन स्तम्भों पर सिंह की मूर्ति है, वे सभी स्तम्भ सम्राट् सम्प्रति के हैं '' और यदि उक्त सिंहस्तम्भ के निर्माता जैनधर्मानुयायी सम्राट् सम्प्रति हैं तो उक्त प्रतीकों की जैनप्रतीकों के रूप में स्वतः पृष्टि हो जायेगी तथा यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि उस काल में जैनधर्म अत्यन्त उत्कर्ष पर था और वर्तमान सारनाथ में जैन-संस्कृति की गहरी जड़ें थीं।

सारनाथ से ईसा की सातवीं शती की भी एक जैन मूर्ति प्राप्त हुई है, जो कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ है।^३°

वर्तमान में सारनाथ में धम्मेक स्तूप के बगल में एक दिगम्बर जैन मन्दिर है, जिसमें काले पाषाण की भगवान् श्रेयांसनाथ की ढाई फुट ऊँची मनोज्ञ पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा विक्रम संवत् १८८१ (सन् १८२४) में इलाहाबाद के निकटवर्ती क्षेत्र पभोसा में प्रतिष्ठित हुई थी और कालान्तर में भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि भेलूपुर, वाराणसी से लाकर स्थापित की गयी है। इस प्रतिमा के आगे भगवान् श्रेयांसनाथ की एक श्वेतवर्ण तथा भगवान् पार्श्वनाथ की श्यामवर्ण प्रतिमा विराजमान है। वेदी के पीछे स्थित एक आलमारी में एक शिलाफलक में नन्दीश्वर चैत्यालय है, जिसमें ६० प्रतिमाएँ अङ्कित हैं। यह फलक भूगर्भ से प्राप्त हुआ है। उ

सम्प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर की दक्षिण दिशा में पुरातत्त्व संग्रहालय एवं जैन धर्मशाला के मध्य स्थित जैन बगीची में भगवान् श्रेयांसनाथ की लगभग ११ फुट उत्तुङ्ग पद्मासन प्रतिमा की स्थापना की गई है। इस प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक एवं बृहत् पूजन २४ नवम्बर २००२ को पूज्या गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न ज्ञानमती माता जी के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न हुआ है। इस अवसर पर काशी जैन समाज के अतिरिक्त देश के विभिन्न नगरों से पधारे अनेक गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे।

इसी जैन बगीची में पुरातत्त्व संग्रहालय की पूर्वी दीवाल से सटी हुई भगवान् सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, श्रेयांसनाथ और पार्श्वनाथ की चार पद्मासन प्रतिमायें भी चार पृथक्-पृथक् चबूतरों पर पहले से ही विराजमान हैं, जो प्राचीन हैं।

सारनाथ के ही समीप हिरामनपुर गाँव में एक श्वेताम्बर जैन मन्दिर है, जिसका निर्माण आचार्य जिनकुशलचन्द्रसूरि ने विक्रम संवत् १८५७ में कराया था। इस आशय का एक शिलालेख मन्दिर के प्रवेशद्वार पर लगा हुआ था, जो अब जीणोंद्धार के समय लुप्त हो गया है। यहाँ भगवान् श्रेयांसनाथ की प्रतिमा मूलनायक के रूप में विराजमान है। मन्दिर के मध्यभाग में तीन खण्डों का संगमरमर ने निर्मित भव्य समवसरण है। मन्दिर के चारों कोनों पर भगवान् के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणकों के चिह्न बने हैं। प्रवेशद्वार के बायीं ओर काशी-कोशल प्रदेशों के तीथोंद्धारक आचार्य जिनकुशलचन्द्रसूरि की पाषाण प्रतिमा है। प्रवेशद्वार के बाहर एक छोटे चबूतरे पर

दादा गुरु के चरण स्थापित हैं। ३३

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक काल से लेकर वर्तमान काल तक सारनाथ और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में जैन संस्कृति के बीज विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं और उनसे सारनाथ में जैन-संस्कृति के व्यापक प्रभाव की जानकारी मिलती है।

सन्दर्भ

- १. द्रष्टव्य, श्रीमद्भागवतमहापुराण, पञ्चम स्कन्ध, चतुर्थाध्याय
- अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
 —वही, प्रथम स्कन्ध, तृतीयाध्याय, श्लोक १३ का पूर्वार्ध
- ३. द्रष्टव्य, वही, पञ्चम स्कन्ध, पञ्चमाध्याय, श्लोक २८-३५.
- ४क. येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठ: श्रेष्ठगुण। आसीद्येनेदं वर्षं भारतिमति व्यपदिशन्ति।
 - वही, पञ्चम स्कन्ध, चतुर्थाध्याय, श्लोक १.
- ४ख. तन्नाम्ना भारतं वर्षमितिहासीज्जनास्पदम्। हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम्।।
 - **आदिपुराण** (भगवज्जिनसेनाचार्य) पर्व १५, श्लोक १५९.
- उसहमजियं च संभवमिहणंदण-सुमइ-णामधेयं च।
 पउमप्पहं सुपासं चंदप्पह-पुप्फदंत-सीयलए।।
 सेयंस-वासुपुज्जे विमलाणंते य धम्म-संती य।
 कुंथु-अर-मिल्लि-सुळ्वय-णिम-णेमि-पास-वड्डमाणा य।।
 मृति समतासागर, कथा तीर्थङ्करों की, तीर्थङ्कर यशगान, पृ० IV.
- ७. वाराणसिए पुहवी-सुपइट्ठेहिं सुपासदेवो य। जेट्ठस्स सुक्क-बारसि-दिणम्मि जादो विसाहाए।।
 - वही, गाथा ५३९.

- ८ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- चंदपहो चंदपुरे, जादो महसेण-लच्छिमह आहिं।
 पुस्सस्स किण्ह-एयारसिए अणुराह-णक्खते।।
 —वही, गाथा ५४०.
- ९. सिंहपुरे सेयंसो, विण्हु-णरिंदेण वेणु-देवीए। एककारसिए फग्गुण-सिद-पक्खे सवण-भे जादो।। —वही, गाथा ५४३
- १०. हयसेण-विम्मलाहिं, जादो वाराणसीए पास-जिणो।
 पुस्सस्स बहुल-एक्कारसिए रिक्खे विसाहाए।।
 —वही, गाथा ५५५.
- ११. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता तथा अपभ्रंश-साहित्य विषयक उल्लेख, तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ, पृ० ५७.
- १२. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४४
- १३. **दर्शनसार,** गाथा ६ (वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन, प्राक्कथन, पृष्ठ क-ख से उद्भृत)
- १४. वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन, प्राक्कथन, पृष्ठ ख.
- १५. वही, पृष्ठ ख.
- १६. वही, पृष्ठ ख.
- १७. तिलोयपण्णत्ती, चतुर्थ महाधिकार, गाथा ५४३ (पूर्वोक्त सन्दर्भ ९).
- १८. (क) अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सिंघपुरी णाम णयरी। तीए णयरीए विण्हू णामेण णराहिवो। तस्स य सयलंतेउरपहाणा सिरी णामेण महादेवी। तीए य सह विसयसुहमणुहवंतस्स अइक्कंतो कोइ कालो। तओ एरिसम्मि काले वट्टंते जेट्टस्स किण्हछट्ठीए सवणणक्खत्ते सिरी सुहपसुत्ता रयणीए चरिमजामम्मि चोद्दस महासुमिणे पासिऊण विउद्धा साहेइ जहाविहिं दइयस्स। तेण वि पुत्तजम्मेणाभिणंदिया।
 - —**चउप्पन्नमहापुरिसचरियं,** सेज्जंससामिचरियं, पृष्ठ ९३.
 - (ख) तओ वि परिभुंजिऊण सललियविलासिणीविलसियव्वाइं अवरविदेहे सीहपुरवरिम्म पवरणिरदाहिवती संजाओ अवराइयणामोवलिक्खओ ति।
 - —वही, अरिट्ठणोमि-कण्ह-वासुदेव-बलदेवबलदेवाणचरियं, पृष्ठ २०५.

- १९. (क) तथैवाश्वपुरी ज्ञेया परा सिंहपुरीति च। महापुरी तथैवान्या विजया च पुरी पुन:।। —हरिवंशपुराण, ५/२६१.
- (ख) अत्रास्ति भरतक्षेत्रे विषयः शकटश्रुतिः। पुरं सिंहपुरं तत्र सिंहसेनो नृपोऽभवत्।। —वही, २७/२०.
- (ग) द्वीपेऽत्रैव सुपद्मायां शीतोदायास्त्वपाक्तटे।
 अभूत् सिंहपुरे भूभृदर्हद्दासो महार्हित:।।
 —वही, ३५/३.
- २०. इहैवापरतो मेरोर्विदेहे गन्धिलाभिधे। पुरे **सिंहपुरा**भिख्ये पुरन्दरपुरोपमे॥ —**आदिपुराण**, ५/२०३.
- २१. अनुभूयं सुखं तस्मिन् तस्मिन्नत्रागमिष्यति। द्वीपेऽस्मिन् भारते सिंहपुराधीशो नरेश्वरः॥ —**उत्तरपुराण**, ५७/१७.
- २२. ततश्च जम्बृद्धीपेऽस्मिन् भरतक्षेत्रभूषणम्।
 रत्ननृपुरवद् भूमेरस्ति सिंहपुरं पुरम्।।
 निषष्टिशलाकापुरुषचरितमहाकाव्यम्, 'श्रीश्रेयांसजिनादिचरितम्',
 ४.१.१५.
- २३. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग पृष्ठ १४४.
- २४. नेमिचन्द्र शास्त्री, **भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का** अवदान, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १३४.
- २५. वही, पृष्ठ १३२.
- २६. राधाकुमुद मुखर्जी, अशोक, पृष्ठ ८.
- २७. अधिकांश शिलालेख सम्प्रति ने जैन तीर्थङ्करों के निर्वाण स्थलों, अपने सगे-सम्बन्धियों से सम्बन्धित स्थलों अथवा जैनमुनियों के समाधि स्थलों पर खुदवाये हैं। कालसी, जूनागढ़, धौली और रूपनाथ के शिलालेखों का सम्बन्ध क्रमशः आदिनाथ, नेमिनाथ, वासुपूज्य और (महावीर को छोड़कर) शेष बीस तीर्थङ्करों के निर्वाण स्थलों से हैं। शाहबाजगढ़ी, मानसेरा, भाब्र्-बैराट, सासाराम

१० : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

और मास्की का सम्बन्ध सम्राट् सम्प्रित के स्वयं एवं सगे-सम्बन्धियों से सम्बन्धित स्थलों से हैं। सिद्धगिरि, ब्रह्मगिरि, चित्तल दुर्ग और सोपारा के शिलालेखों का सम्बन्ध जैनमुनियों के समाधिस्थलों से हैं। इन शिलालेखों में सम्राट् सम्प्रित ने जैनधर्म के सिद्धान्तों को गुम्फित किया है, जिसकी पृष्टि अन्तःपरीक्षण से होती है। इन शिलालेखों को सम्प्रित ने उन-उन सार्वजनिक स्थानों पर खुदवाया था, जहाँ अधिकांश लोग यात्रा के लिए निरन्तर जाते थे। शिलालेखों में सम्राट् सम्प्रित ने अपने को देवानां प्रिय प्रियदर्शी के रूप में अङ्कित किया है। देवानां प्रिय विशेषण का उपयोग प्रायः साधु, महाराज, भक्तजन या किसी सेठ के लिए होता था। कभी-कभी पित-पत्नी भी एक-दूसरे के सम्बोधन के लिए इसका व्यवहार करते थे। डॉ॰ शास्त्री के अनुसार प्रियदर्शी सम्राट् सम्प्रित का उपनाम था, अशोक का नहीं। — भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १३८-१४०. (मास्की, गजरी, निदर एवं उदेगोलम से प्राप्त अभिलेखों में देवानांप्रिय के साथ

(मास्की, गुजर्रा, निट्टूर एवं उदेगोलम से प्राप्त अभिलेखों में देवानांप्रिय के साथ अशोक नाम मिलता है इस कारण अब देवानांप्रिय के अभिलेखों को अशोक का माना जाता है। — सम्पादक)

- २८. मोतीचन्द, काशी का इतिहास, पृष्ठ ६१.
- २९. नेमिचन्द्र शास्त्री, पूर्वोक्त, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १५०.
- ३०. सत्येन्द्र मोहन जैन, दिगम्बर जैन श्री पार्श्वनाथ जन्मभूमि मन्दिर भेलूपुर, वाराणसी का ऐतिहासिक परिचय, पृ. ८.
- ३१. बलभद्र जैन, **जैनधर्म का प्राचीन इतिहास**, प्रथम भाग, पृ० १४३-१४४.
- ३२. लिलितचन्द जैन, वाराणसी जैनतीर्थ दर्शन, पृ० १२-१३.

जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० विजयकुमार झा

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की कृज् धातु में सम् पूर्वक घज् प्रत्यय के योग से हुआ है। सम्+क़+घञ्=संस्कार। इसका अर्थ संस्करण, परिमार्जन, शृद्धि, परिष्कार अथवा स्वच्छता है। इसका प्रयोग भारतीय इतिहास, धर्म और साहित्य में अनेक अर्थों में हुआ है। संस्कार शब्द के तात्पर्य से न्यूनाधिक सीमा तक समता रखने वाला अंग्रेजी का सेक्रामेण्ट (Sacrament) शब्द है जिसका अर्थ है - धार्मिक विधि-विधान अथवा कृत्य जो आन्तरिक तथा आत्मिक सौन्दर्य का ब्राह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है। इसका प्रयोग रोमन कैथॉलिक चर्च द्वारा सप्तक्रियाओं के लिए होता है। किसी वचन अथवा प्रतिमा पुष्टि, रहस्यपूर्ण महत्त्व की वस्तु, पवित्र प्रभाव तथा प्रतीक भी सेक्रामेण्ट शब्द का अर्थ है। जैन पुराणों में संस्कार के लिए क्रिया शब्द का व्यवहार हुआ है। मानव जन्म से असंस्कृत होता है, किन्तु संस्कारों की अनुपालना से उसका भौतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन निखर उठता है और सामाजिक-धार्मिक जीवन उन्नत होता है। संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है। रशिचता-सन्निवेश, मनःपरिष्करण, धर्मार्थ समाचरण, शुद्धि, सन्निधान एवं क्रियागत विधान संस्कार के प्रमुख लक्षण हैं। व्यक्ति के अभीष्ट की प्राप्ति तथा प्रयोजन की सिद्धि संस्कारों के माध्यम से होती है।

संस्कारों को सम्पन्न किये बिना मानव जीवन अपवित्र, अपूर्ण और अव्यवस्थित था। अप्रत्यक्ष रूप से जो बाधाएँ लगी होती हैं, उन्हें दूर करना तथा आगे के लिए जीवन को निर्विघ्न करना संस्कारों का प्रधान उद्देश्य है। व्यक्ति के जीवन को योग्य , गुणाढ्य, परिष्कृत और व्यवस्थित रूप प्रदान करने में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भौतिक या लौकिक समृद्धि तथा वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी संस्कारों को सम्पन्न किया जाता है। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक प्रतिमानों, मूल्यों, आदशों आदि का ज्ञान प्राप्त करता है जिससे नैतिक उत्थान होता है और वह जागरूक

^{*.} डी॰बी॰एन॰ छात्रावास, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰), पन-३०२००४.

होकर अन्य कार्यों के लिए उत्प्रेरित होता है। वह सद्चित्र बनकर सामाजिक उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करता है तथा धार्मिक दृष्टि से इष्टदेवों का पूजन, स्तुति, प्रार्थना, आराधना आदि करता है। संस्कार मार्गदर्शन का कार्य करता है जो आयु बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन को एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाता है। संस्कारों के संयोजन और अनुगमन से आध्यात्मिक विकास भी होता है, क्योंकि समस्त संस्कारों का प्रधान आधार धर्म है। संस्कार व्यक्ति के अनुराग, स्नेह, प्रेम, हर्ष और विशाद को प्रतीकात्मक रूप में भी अभिव्यक्त करती है। अत: विभिन्न मतों में अनेक संस्कारों को सम्पन्न करने का विधान विहित है।

कर्मकाण्डों का आलोचक होने के कारण प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में संस्कारों का विस्तृत उल्लेख नहीं है। बारह अंगों में सातवें अंग उपासकदशाङ्ग में संस्कारों का उल्लेख है लेकिन सर्वप्रथम जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण में गर्भ से लेकर निर्वाणपर्यन्त सभी संस्कारों का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। पुराणों के रचनाकाल के समय संस्कारहीन व्यक्ति को शूद्र समझा जाता था। अत: पुराणकारों ने जैन अनुयायियों को सामाजिक सम्मान प्रदान करने के लिए संस्कारों का विधान विहित किया। जैनाचार्य संस्कारों के विषय में हिन्दू एवं अन्य व्यवस्थापकों के सामान्य प्रवृत्ति के अनुकूल हैं; किन्तु युग विशेष की परिवर्धित परिस्थितियों के कारण इनके वर्णन अधिकांशत: भिन्न हैं। जैन संस्कारों में व्यक्तित्व निर्माण और विकास के लिए वैदिक धर्म के समान ही नहीं बल्क उससे भी अधिक योग्यता विद्यमान है। वैदिक संस्कार गर्भाधान से अन्त्येष्टि के बीच गतिशील रहते हैं जबिक जैन संस्कार आधान से निर्वाणपर्यन्त सम्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार आत्मा की पवित्रता के लिए विकारशोधन की गुणस्थान प्रणाली मान्य है, उसी प्रकार देह शुद्धि और पात्रत्व विकास के लिए संस्कार भी अपेक्षित हैं। युगों के ज्ञान और अनुभव के माध्यम से जैनाचार्यों ने यह अनुभव प्राप्त किया कि प्राणी जीव और अजीव इन दो तत्त्वों का संयोग है। इस संयोग को संस्कार द्वारा परिष्कृत कर जीव के मौलिक चेतन स्वरूप का ज्ञान सम्भव है। संस्कार जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्यमार्ग का काम करते हैं। जिनसेनाचार्य के अनुसार जीवों का जन्म दो प्रकार से होता है शरीर जन्म तथा संस्कार जन्म। शरीर जन्म में प्रथम शरीर का क्षय हो जाने पर दूसरे पर्याय में अन्य शरीर की प्राप्त होती है तथा संस्कार जन्म में संस्कारों के योग से आत्मलाभ प्राप्त पुरुष को द्विजत्व की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार मृत्यु भी दो प्रकार का है— शरीर मृत्यु और संस्कार मृत्यु। जो व्यक्ति यथाविधि संस्कारों का सम्पादन करता है उसे उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होती है। संसार के भवबन्धन, जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से उन्हें मुक्ति मिलती है। ऐसे पुरुष श्रेष्ठ जाति में जन्म ग्रहण कर सद्गृहस्थ तथा परिव्रज्या को व्यतीत कर स्वर्ग

प्राप्त करते हैं। स्वर्ग से च्युत होने पर क्रमशः चक्रवर्ती तथा अर्हन्त पद के बाद परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं। १० इस प्रकार संस्कारों को सम्पन्न करने पर क्रमशः अभ्युदय की उपलब्धि होती है।

जैन पुराणों में वर्णित संस्कारों अथवा क्रियाओं को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। यथा- गर्भान्वय, दीक्षान्वय एवं क्रियान्वय संस्कार। गर्भान्वय में तिरपन, दीक्षान्वय में अड़तालीस तथा क्रियान्वय के अन्तर्गत सात संस्कारों का उल्लेख है। '' अन्त्येष्ट संस्कार का इन श्रेणियों से पृथक् उल्लेख हुआ है। वैदिक संस्कारों की संख्या धर्मशास्त्रकारों द्वारा अलग-अलग बतायी गयी है। गौतम' शंख और मिताक्षरा ने संस्कारों की संख्या चालीस, वैखानस ने अठारह, पारस्कर, बौधायन, वराह गृहसूत्रों में तेरह तथा आश्वलायन गृहसूत्र में ग्यारह दी गयी है। अंगिरा ने पच्चीस तथा व्यास ने सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है; किन्तु प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार संस्कारों की संख्या सोलह मानते हैं। आधुनिक समीक्षकों का विचार है कि संस्कारों की संख्या लोकप्रचलित मान्यता पर निर्भर थी। '

इस्लाम मत में भी एकाधिक संस्कारों का उल्लेख मिलता है। शुद्धि और स्वास्थ्य के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 'सुन्नत' अथवा 'खतना' एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है जो बाल्यावस्था में सम्पन्न किया जाता है। इस्लाम धर्म में भी पैदाइस, तालीम, गुश्ल, वज़ू, नमाज़, रोज़ा, ख़ैरात, निकाह, हज़ और दफ़न आदि का विधान विहित है लेकिन इन्हें संस्कार नहीं माना जाता है। निकाह को भी संस्कार नहीं माना गया है, निकाह पित-पत्नी के बीच जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध नहीं है। यह एक संविदा (करार) है जो तलाक द्वारा बकाया मेहर देकर तोड़ा जा सकता है।

ईसाई धर्मावलिम्बयों के कल्याण और उद्धार के निमित्त धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का संग्रह किया गया और मानव के विभिन्न एवं विपरीत वातावरणों के अनुकूल अनेक प्रार्थनाओं और पूजा पद्धतियों का निर्माण हुआ। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक ईसाई के जीवन में धर्म की प्रधानता अक्षुण्ण रखने के निमित्त सात संस्कारों का विधान है जिसमें धर्म के समस्त मौलिक उपदेशों का समावेश हो जाता है। १. मान्यता प्रदान संस्कार केवल पादिरयों के लिए होता है। इस संस्कार द्वारा धर्म में उनकी दीक्षा होती है और उपासकों के अन्य संस्कारों को सम्पन्न कराने का अधिकार प्रदान किया जाता है। २. जन्म संस्कार के द्वारा नवजात शिशु चर्च की सदस्यता प्राप्त करता है। ३. प्रमाणीकरण संस्कार विशप सम्पादित करता है। इस संस्कार द्वारा बारह वर्ष की आयु के बच्चों के चर्च की सदस्यता प्रमाणित की जाती है और उन्हें धर्म-सम्बन्धी आवश्यक बातों का ज्ञान कराया जाता है। ४. प्रायश्चित संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा जन्म संस्कार के बाद के समस्त पापों का निवारण होना माना जाता है। इसमें सर्वप्रथम पापात्मा को अपने अन्तःकरण से किये हुए पापों के प्रति दुःख

प्रकट करना और ईश्वर को पुन: अप्रसन्न न करने का संकल्प लेना होता है। इसके पश्चात् पादरी के सामने उसे अपने पाप को स्वीकार करते हुए उससे क्षमा प्राप्त करनी होती है तथा साथ ही उसके आदेशानुसार तीर्थयात्रा, प्रार्थना या दान में से किसी एक प्रायश्चित को अंगीकार करना होता है। ये प्रायश्चित सत्कर्म कहलाते हैं। इसी प्रकार बौद्धधर्म में स्वयं के पापों की गुरु के समक्ष स्वीकारोक्ति 'निज्जझत' कहलाता है और प्रायश्चित किया जाता है। जैनधर्म में भी आजीविका करने वाले द्विजों को अपने लगे हुए दोषों की शुद्धि के लिए पक्ष, चर्या और साधना का पालन करने का नियम है। ५. विवाह संस्कार चर्च में सम्पन्न होता है जिसके बाद पित-पत्नी का सम्बन्ध अविच्छेघ समझा जाता है। ६. अन्तिम अभिषेक अर्थात् मृत्यु संस्कार में पुजारी मरणासन्न व्यक्ति की आत्मा को चिरशान्ति और स्वर्ग में पहुँचने के लिए शक्ति प्रदान करता है। ७. पवित्र यूकारिस्ट संस्कार अन्तिम भोज (लास्ट सपर) से सम्बन्धित है। वस्तुतः यही कैथॉलिक धर्म का केन्द्रीय रहस्य है। इसी के आधार पर ईसाई धर्म में सामूहिक प्रार्थना के महत्त्वपूर्ण उत्सव का आरम्भ हुआ, जिसके लिए सुसज्जित और विशाल गिरजाघरों का निर्माण हुआ। १४

सोलह हिन्दू संस्कारों में क्रमश: १. गर्भाधान संस्कार में विवाहोपरान्त पहले पहल पुरुष स्त्री में विधिवत उपयुक्त वातावरण में अपना बीज स्थापित कर सन्तान की कामना करता है। १५ इसे निषेक (ऋतुसंगम) चतुर्थी कर्म अथवा चतुर्थी होम १६ भी कहा गया है। २. पुंसवन संस्कार गर्भ के तीसरे माह में तेजस्वी पुत्र की कामना १७ से किया जाता है। ३. सीमन्तोन्नयन संस्कार गर्भ के चौथे माह में गर्भिणी स्त्री को विघ्न बाधाओं से बचाने के लिए अनेक अनुष्ठानों द्वारा^{१८} सम्पन्न होता है। ४. जातकर्म संस्कार अनिष्टकारी शक्तियों के प्रभाव से नवजात को बचाने के लिए^{१९} किया जाता है। ५. नामकरण संस्कार प्राय: जन्म के दस से तीस दिन की अवधि में शुभ लग्न में देवपूजन और यज्ञाहृति के साथ सम्पन्न किया जाता है।^{२०} ६. निष्क्रमण संस्कार सामान्यत: जन्म के बारहवें दिन से चौथे माह तक शुभ लग्न में सम्पन्न होता है। रह इसमें शिशु को प्रथम बार घर के बाहर लाकर वेद मन्त्रों के पाठ के साथ माता-पिता द्वारा सूर्य दर्शन कराया जाता है। ७. अन्नप्राशन संस्कार जन्म के पाँच माह बाद विधिवत् शिशु को सर्वप्रथम अन्न, दूध, मधु, घी, दही का मुख से स्पर्श कर सम्पन्न होता है। ८. चूड़ाकरण संस्कार में शिशु के गर्भकाल के सिर के बाल और नख कटवाये जाते हैं। इसे मुण्डन भी कहा गया है। यह संस्कार देवालयों में शुभ दिन नान्दीमुख पितरों का विधिपूर्वक हवन-पूजन, मातृकाओं और देवों की स्तुति एवं अर्चन के साथ सम्पन्न की जाती है। चूड़ाकरण से दीर्घायु और कल्याण प्राप्त होने की मान्यता है। रह शरीर की स्वच्छता और पवित्रता से शिशु का परिचय कराना भी इसका उद्देश्य था। ९. कर्णच्छेदन संस्कार विभिन्न धार्मिक क्रियाओं के साथ शिश् के शोभन, अलंकरण

और स्वास्थ्य के निमित्त किया जाता है। १०. विद्यारम्भ संस्कार में प्राय: पाँच वर्ष की आयु के पश्चात् किसी शुभ लग्न में गुरु द्वारा वर्णमाला लिख कर शिशु को अक्षरारम्भ कराया जाता है। 4 साथ ही गणपित, गृहदेवता, सरस्वती पूजन, हवन, गुरु को भेंट आदि प्रदान कर शिशु के सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के साथ-साथ ज्ञान और बृद्धि के उत्थान की कामना की जाती है। ११. उपनयन संस्कार का सम्बन्ध व्यक्ति के बौद्धिक उत्कर्ष से है। इसके द्वारा व्यक्ति गुरु, वेद, यम, नियम और देवता के निकट पहुँचता है ताकि ज्ञान प्राप्त कर सके। इस संस्कार की सम्पन्नता से बालक वर्ण अथवा जाति का सदस्य बनता है और द्विज कहलाता है। यह संस्कार इस बात का प्रमाण था कि अनियन्त्रित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियन्त्रित, गम्भीर और अनुशासित जीवन प्रारम्भ हुआ। र यह संस्कार प्राय: आठ से बारह वर्ष के बीच द्विजों द्वारा किया जाता था। बालक को यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करने के लिए दिया जाता है जो यज्ञ से सम्बद्ध माना गया है। देवी-देवताओं के पूजन-हवन के साथ ही बालक को जनेऊ, कौपीन, मेखला, उत्तरीय, मृगचर्म, दण्ड धर्मशास्त्रीय मन्त्रोच्चारण के साथ धारण कराया जाता है। २० जनेऊ के तीन धागे सत्, रज और तम गुणों के प्रतीक हैं। साथ ही ऋषि, देव और पित ऋण का स्मरण दिलाते हैं। आचार्य गायत्री मन्त्र के साथ शिष्य को उपदेश देते हैं। उपनयन के बाद विद्यारम्भ प्रारम्भ होता था। १८ हिन्दू समाज में जीवन को अनुशासित, दायित्व निर्वाह, निस्पृह और निर्लिप्त बनाने में उपनयन संस्कार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। १२. वेदारम्भ संस्कार में शिष्य गुरु सान्निध्य में वेदाध्ययन कर बौद्धिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष^{२९} प्राप्त करता है। १३. केशान्त संस्कार में विद्यार्थी के दाढ़ी आदि का पहली बार क्षौरकर्म (काटना) होता है। ३० इसके द्वारा युवा को ब्रह्मचर्य और सदाचरण का स्मरण कराया जाता है। १४. समापवर्तन संस्कार में शिक्षा पूर्ण होने पर गुरुकुल से घर लौटने के समय स्नातक स्नान र कर हवन-पूजन के बाद दण्ड, मेखला आदि त्याग कर वस्त्राभूषण पहनता है और आचार्य का आशीर्वाद और आज्ञा पाकर गृह की ओर प्रत्यावर्तन करता है। १५. विवाह संस्कार के उद्देश्यों में वंशवृद्धि प्रधान उद्देश्य है। सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों का निर्वाह विवाह के द्वारा ही सम्भव था। विवाह ऐसा बन्धन है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता तथा आजन्म एक साथ रहने के लिए वचनबद्ध किया जाता है। समस्त ऋणों से उऋण होने के लिए धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए विवाह आवश्यक माना गया है। विवाह के बिना व्यक्ति निस्तेज माना जाता है। रे विवाह के अन्तर्गत वर-वधू की विभिन्न योग्यताएँ, गृण, गोत्र और वर्ण आदि का विचार किया जाता है। विवाह संस्कार के समय वाग्दान, वर-वरण, कन्यादान, विवाह-होम, पाणिग्रहण, हृदयस्पर्श, सप्तपदी, अश्वारोहण, सूर्यावलोकन, ध्रुवदर्शन, त्रिरात्र व्रत और चतुर्थी कर्म आदि का विधान था। १६. अन्त्येष्टि संस्कार में विधिवत मन्त्रोच्चार के साथ शव विसर्जन किया जाता है। जन्म के बाद संस्कारों द्वारा मनुष्य इस लोक को विजित करता है

जबिक मृत्योपरान्त के संस्कारों द्वारा परलोक को विजित करता है। १४ शवदाह, अशौच की स्थिति, पिण्डदान, श्राद्ध, मन्त्रोच्चारण, ब्राह्मण भोजन आदि भी विधिवत सम्पन्न होते हैं।

जैन-पुराणों में संस्कारों का विशेष महात्म्य वर्णित है। जैन गर्भान्वय क्रिया के अन्तर्गत सम्यक् दर्शन की शुद्धता को धारण करने वाले जीवों के लिए तिरपन संस्कार विहित हैं। भव्य पुरुषों को सदा उनका पालन करना चाहिए और द्विजों की विधि के अनुसार इन क्रियाओं को करना चाहिए। यथा—

इति निर्वाणपर्यन्ताः क्रिया गर्भादिकाः सदा। भव्यात्मभिरनुष्ठेयास्त्रिपञ्चाशत्समुच्चयात्।। यथोक्तविधिनैताः स्युरनुष्ठेया द्विजन्मभिः।

(आदिपुराण, ३८/३१०-३११)

- श. आधान संस्कार पत्नी के रजस्वला होने पर जब चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है तब अर्हन्तदेव की पूजा कर मन्त्रपूर्वक विषयानुराग से विरत होकर उत्तम सन्तान की कामना से की जाती है। १५ इसमें पीठिका, जाति, निस्तारक, ऋषि, सुरेन्द्र, परमेष्ठी से सम्बन्धित मन्त्रों का यथाविधि प्रयोग होता है। १६ यह हिन्दू धर्म के गर्भाधान संस्कार के समतुल्य है।
- प्रीति संस्कार का उद्देश्य गर्भ संरक्षण तथा गर्भवती को प्रसन्न करना है। मन्त्रोच्चार एवं जिनेन्द्रदेव के पूजन के साथ यह गर्भाधान के तीसरे माह में किया जाता है।^{३७} यह वैदिक सीमन्तोन्नयन संस्कार के समान है।
- ३. सुप्रीति संस्कार गर्भ की पुष्टि और उत्तम सन्तान की कामना से गर्भाधान के पाँचवें माह में देवाराधना के साथ किया जाता है। वैदिक पुंसवन संस्कार से इसकी तुलना की जा सकती है।
- ४. **धृति संस्कार** गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ विधि-विधानपूर्वक सातवें माह में सम्पन्न किया जाता है।^{१९}
- मोद संस्कार में गर्भिणी के शरीर पर गत्रिका बान्धना, अभिमन्त्रित बीजाक्षर लिखना और मंगलसूचक आभूषण पहनाने की परम्परा है * जो नवें माह के निकट होने पर किया जाता है।
- ६. प्रियोद्भव संस्कार शिशु के जन्म होने पर विधिपूर्वक माता को स्नान और सन्तान को आशीर्वाद के बाद आकाश दर्शन करवा कर सम्पन्न किया जाता है। यह हिन्दू जातकर्म संस्कार के अनुरूप है। ११

- ७. नामकर्म संस्कार शिशु के जन्म के बारह दिन बाद शुभ लग्न में किये जाने का विधान है। आचार्य जिनसेन के अनुसार नामकर्म संस्कार अन्नप्राशन के बाद भी हो सकता था।^{४२}
- ८. बहिर्यान संस्कार शुभलग्न में मंगल वाद्यों को बजाते हुए शिशु को प्रथम बार प्रसूतिगृह से बाहर लाकर किया जाता है। यह वैदिक निष्क्रमण संस्कार के समान है।
- ९. निषधा संस्कार में शिशु को मंगलकारक आसन पर बैठाया जाता है तथा मंगल कलश की स्थापना, मन्त्रोच्चारण व देवपूजन कर बालक के निरन्तर दिव्य आसनों पर आसीन होने की योग्यता की कामना की जाती है।**
- १०. **अन्नप्राशन संस्कार** में सिविधि अर्हन्तदेव की पूजा कर मन्त्रोच्चारण के साथ प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है।^{४५}
- ११. व्युष्टि संस्कार प्रथम वार्षिक जन्म दिवस के रूप में पूर्ववत् जिनेन्द्रदेव का पूजन, दान, प्रीतिभोज द्वारा सम्पन्न होता है। इसे वर्षवर्द्धन संस्कार भी कहा गया है। अ
- चौलकर्म संस्कार में शिशु मुण्डन के बाद सुस्नान गन्धानुलिप्त तथा समलंकृत होकर बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करता है।^{४७}
- १३. लिपिसंख्यान संस्कार पांचवें वर्ष में बालक को अक्षर का बोध करवा कर सम्पन्न किया जाता है। अर्थशास्त्र, रघुवंशा, उत्तररामचरित, कादम्बरी, मार्कण्डेयपुराण, संस्कारप्रकाश, संस्काररत्नमाला आदि में भी इसका उल्लेख है।^{४८}
- १४. उपनीति संस्कार को उपनयन संस्कार भी कहा जाता है। गुरु के समीप शिष्य को लाना उपनीति कहलाता है। जिनसेनाचार्य के अनुसार यह आठवें वर्ष में होता है। बालक जिनालय में अर्हन्तदेव की पूजा कर मौजीबन्धन करता है। इसके बाद शिखाधारी बालक को सफेद उत्तरीय, वस्न, यज्ञोपवीत धारण करवा कर गुरु द्वारा विधिवत अभिमन्त्रित करके अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रतों के उपदेश के द्वारा यह संस्कार सम्पन्न होता है। बालक को विद्या अध्ययन काल में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना विहित है। के तीन धागे का यज्ञोपवीत सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र का सूचक है। सात धागे का यज्ञोपवीत सात परम स्थानों का बोधक है। जिनेन्द्रदेव की ग्यारह प्रतिमाओं के व्रत के प्रतीक के रूप में ग्यारह धागे के यज्ञोपवीत का उल्लेख मिलता है। सदाचारी व्यक्ति को ही यज्ञोपवीत धारण करनी चाहिए। पापाचरण करने वालों का यज्ञोपवीत पाप का प्रतीक है। के

- १८ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- १५. व्रतचर्या संस्कार में ब्रह्मचारी को संकल्पपूर्वक गुरु से श्रावकाचार, आध्यात्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, शकुनशास्त्रादि विषयों का अध्ययन करना होता है।^{५१}
- १६. व्रतावरण संस्कार समस्त विद्याओं का अध्ययन कर लेने के बाद होता है जिसमें जिनेन्द्रदेव और गुरु को साक्षी मानकर मधु, मांस, हिंसादि के पाँच स्थूल पापों के आजीवन त्याग का संकल्प लेना होता है। १२
- विवाह संस्कार भोगभृमि काल में विवाह संस्कार नहीं था, क्योंकि १७. स्त्री-पुरुष युगल साथ उत्पन्न होते और केवल एक युगल को जन्म देकर समाप्त हो जाते थे। 🕫 कालान्तर में गृहस्थ जीवन में प्रवेशार्थ, सम्यक जीवन व्यतीत करने, सन्तानों की रक्षा और सामाजिक-व्यवस्था बनाये रखने के लिए विवाह आवश्यक माना गया, क्योंकि विवाह न करने से सन्तित का उच्छेद हो जाता है और सन्तति न होने पर धर्म का उच्छेद होता है। पुत्रहीन मनुष्य की मोक्ष नहीं होती है। ५४ जैनेतर ग्रन्थों में भी विवाह के महत्त्व का उल्लेख मिलता है। धर्म, अर्थ व काम की प्राप्ति विवाह का उद्देश्य माना गया है। ५५ जैन पुराणों में विवाह के पाँच प्रकारों स्वयंवर, क गान्धर्व, क परिवार द्वारा नियोजित, क प्रजापत्य १९ और राक्षस ६० विवाह का वर्णन है। चारों वर्णों को अपने वर्ण में ही विवाह का विधान था। विशेष परिस्थिति में अनुलोम विवाह करने की छूट थी। ६१ सामान्यतः एकपत्नीव्रत का प्रचलन था लेकिन बहु विवाह के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। विवाह प्राय: वयस्क होने पर सम्पन्न होते थे। कुल, रूप, सौन्दर्य, पराक्रम, वय, विनय, वैभव, बन्धु एवं सम्पत्ति आदि श्रेष्ठ वर के गुण वर्णित हैं।६२ श्रेष्ठ कन्याओं में विनयी, सौन्दर्य, चेष्टायुक्त गुणों का उल्लेख हैं। ६३ विवाह में उपहार भी दिये जाने का उल्लेख है। ६४ शुभलग्न में कन्यादान होते थे। इस अवसर पर विशेष उत्सव व बन्धु-बान्धवों का सिम्मलन होता है। मन्त्रोच्चार द्वारा देव- अग्निपूजन, पाणिग्रहण, चैत्यालय में अर्हन्तदेव का पूजन, विवाहोपरान्त सात दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का विधान विहित है।६५
- १८. वर्णालाभ संस्कार में पिता द्वारा पृथक् से धन-मकान आदि पाकर स्वतन्त्र आजीविका किया जाता है। पिता आशीर्वाद देकर सन्तान को वर्णालाभ क्रिया में नियुक्त करता है, जिससे वह सदाचार द्वारा पिता के धर्म का पालन करने में समर्थ होता है।^{६६}
- १९. कुलचर्या संस्कार— पूजा, दान, आजीविका के निर्दोष असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प कार्य कुलचर्या संस्कार के लक्षण हैं। आचार्य

- जैन_पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : १९ जिनसेन ने इसे कुलधर्म कहा है। ६७
- २०. **गृहीशिता संस्कार** शुभ मन्त्र, वर्णोत्तमता, शास्त्र ज्ञान तथा चारित्रिक गुणों से युक्त गृहीश द्वारा सम्पन्न किया जाता है।^{६८}
- २१. प्रशान्ति संस्कार में गृहस्थी का भार समर्थ पुत्र को सौंप कर उत्तम शान्ति का आश्रय लिया जाता है तथा अनासक्त होकर स्वाध्याय, सामायिक और उपवास करते रहना प्रशान्ति क्रिया कहलाती है। ६९
- २२. गृहत्याग संस्कार में सर्वप्रथम सिद्ध भगवान् का पूजन कर समस्त इष्टजनों को आमन्त्रित कर उनको साक्षी मानकर पुत्र को सब कुछ सौंप कर गृहत्याग किया जाता है। ज्येष्ठ पुत्र को आलस्य रहित होकर देव और गुरुओं की पूजा करते हुए अपने कुलधर्म का उपदेश देकर गृहस्थ निराकुल होकर दीक्षा ग्रहण करने के लिए अपना घर छोड़ देता है। **
- २३. **दीक्षाद्य संस्कार** दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व किये जाने वाले आचरणों को कहा गया है।^{७१}
- २४. **जिनरूपता संस्कार** में वस्त्रादि का परित्याग कर जिनदीक्षा के इच्छुक पुरुष द्वारा दिगम्बर रूप धारण किया जाता है। अ
- २५. **मौनाध्ययनवृत्तत्त्व संस्कार दी**क्षा के बाद शास्त्र की समाप्ति पर्यन्त मौन रह कर अध्ययन करने की प्रवृत्ति को कहा गया है। इस संस्कार को सम्पन्न करने से इहलोक में योग्यता और परलोक में प्रसन्नता बढ़ती है।^{७३}
- २६. **तीर्थकृद्भावना संस्कार** में समस्त शास्त्रों के अध्ययनोपरान्त श्रुत[्]ज्ञान प्राप्त तीर्थङ्कर पद की सम्यक्दर्शन आदि भावनाओं का अभ्यास किया जाता है।⁹⁴
- २७. गुरुस्थानाभ्युपगम संस्कार द्वारा गुरु पद प्राप्त करने के लिए साधु में ज्ञानी-विज्ञानी, गुरु को प्रिय, विनयी तथा धर्मात्मा के गुणों को विकास होता है। ^{७५}
- २८. **गणोपत्रह संस्कार** में गण (मुनि संघ) पोषक द्वारा मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविकाओं के सदाचार, कल्याण और दुराचारियों को दूर हटाने तथा स्वयं के अपराधों का प्रायश्चित्त किया जाता है।^{७६}
- २९. **स्वगुरुस्थानावाप्ति संस्कार** में अपने गुरु के समान स्थान एवं सम्मान प्राप्त कर समस्त संघ का पालन किया जाता है।^{७७}
- ३०. **निःसंगत्वात्मभावना संस्कार** द्वारा सुयोग्य शिष्य पर समस्त भार सौंप कर सब प्रकार के परिग्रह से रहित होकर साधु एकांकी विहार करता है।^{७८}

- २० : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- ३१. **योगनिर्वाण सम्प्राप्ति संस्कार** में अपने आत्मा का संस्कार कर सल्लेखना धारणार्थ उद्यत और सब प्रकार से आत्मा की शुद्धि की जाती है।^{७९}
- ३२. योगनिर्वाणसाधन संस्कार द्वारा समस्त आहार और शरीर को कृश करता हुआ योगी योगनिर्वाण साधना के लिए प्रेरित होता है। इस समाधि के द्वारा चित्त को जो आनन्द होता है उसे निर्वाण कहते हैं। चूँकि योग निर्वाण का साधन है अत: इसे योगनिर्वाणसाधन कहा गया है।
- ३३. **इन्द्रोपपादसंस्कार** से मन-वचन-कर्म को स्थिर कर जिसने प्राणों का परित्याग किया है उसे दिव्य अवधिज्ञान होता है कि मैं इन्द्रपद में उत्पन्न हुआ हूँ। ^{८१}
- ३४. **इन्द्राभिषेक संस्कार** जिसे अपने जन्म का ज्ञान हो गया ऐसे इन्द्र का श्रेष्ठ देवगण इन्द्राभिषेक संस्कार करते हैं।^{८२}
- ३५. **विधिदान संस्कार** द्वारा नम्रीभूत हुए देवों को पुन: अपने पद पर प्रतिष्ठित करता हुआ वह इन्द्र विधिदान क्रिया में प्रवृत्त होता है।^{८३}
- ३६. **सुखोदय संस्कार** द्वारा सन्तुष्ट हुए देवों द्वारा वह पुण्यात्मा इन्द्र चिरकाल तक देवों के सुखों का अनुभव करता है।^{८४}
- ३७. **इन्द्रत्याग संस्कार** द्वारा धीर-वीर पुरुष स्वर्ग के भोगों व ऐश्वर्य को बिना किसी कष्ट के त्याग देते हैं।^{८५}
- ३८. **इन्द्रावतार संस्कार** में जो इन्द्र आयु के अन्त में अर्हन्तदेव का पूजन कर स्वर्ग से अवतार लेना चाहता है उसके आगे की अवतार क्रिया का उल्लेख है।^{८६}
- ३९. **हिरण्योत्कृष्टजन्मता संस्कार** द्वारा रत्नमय गर्भागार के समान गर्भ में तीन ज्ञान को धारण करते हुए अवतार होता है।^{८७}
- ४०. मन्दराभिषेक संस्कार में जन्म के बाद देवों द्वारा मेरु पर्वत पर पवित्र जल से अभिषेक किया जाता है, वह परमेष्ठी की मन्दराभिषेक क्रिया होती है।"
- ४१. **गुरुपूजन संस्कार** में उनके विद्याओं का उपदेश होता है तथा सभी उनकी पूजा करते हैं।^{८९}
- ४२. **यौवराज्य संस्कार** द्वारा युवराज पद प्राप्त होता है और राज्यपट्ट बांध कर अभिषेक किया जाता है। १°
- ४३. स्वराज्य संस्कार में समस्त राजाओं द्वारा राजाधिराज पद पर अभिषेक किया जाता है और वे अन्य के शासन से मुक्त होकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का शासन करते हैं। ११

- जैन मुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : २१
- ४४. चक्रलाभ संस्कार में निधियों और रत्नों की उपलब्धि होने पर चक्र की प्राप्ति होती है और समस्त प्रजा द्वारा उनकी अभिषेक सहित पूजा की जाती है।^{९२}
- ४५. **दिशाञ्चय संस्कार** में चक्ररत्न को आगे कर समुद्र सहित समस्त दिशाओं को विजित किया जाता है।^{९३}
- ४६. चक्राभिषेक संस्कार तब सम्पन्न किया जाता है जब भगवान् दिग्विजय पूर्ण कर अपने नगर में प्रवेश करते हैं।^{९४}
- ४७. **साम्राज्य संस्कार** चक्राभिषेक के बाद होता है जिसमें वह जीव इहलोक और परलोक दोनों में ही समृद्धि को प्राप्त होता है।^{९५}
 - ४८. निष्कान्ति संस्कार में बहुत दिनों तक प्रजापालन के बाद दीक्षा ग्रहणार्थ उद्यम होते हैं। इस संस्कार में भगवान् अभिक्रमण करते हैं तथा केशलुंचन, पूजा आदि होती है।^{९६}
 - ४९. **योगसम्मह संस्कार-** ध्यान और ज्ञान के संयोग को योग कहते हैं तथा उस योग से जो अतिशय तेज उत्पन्न होता है वह योगसम्मह कहलाता है।^{९७}
 - ५०. **आर्हन्त्य संस्कार** अद्भुत विभूतियों को धारण करने वाले उन भगवान् का आर्हन्त्य नामक संस्कार् सम्पन्न किया जाता है।^{९८}
 - ५१. विहार संस्कार में धर्मचक्र को आगे कर भगवान् द्वारा विहार किया जाता है। ९९
 - ५२. योगत्याग संस्कार में विहार समाप्त कर समवसरण विघटित होती है। रै॰॰
 - ५३. अग्रनिर्वृत्ति संस्कार उनके लिए सम्पन्न होता है जिनका समस्त योगों का निरोध हो चुका है, जो जिनों के स्वामी हैं, जिन्हें ईश्वरत्व की अवस्था मिल गयी है, जिनके अघातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं, जो उर्ध्वगति को प्राप्त हुए हैं, और जो मोक्ष स्थान पर पहुँच गये हैं। १०१

दीक्षान्वय संस्कार— इसके अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व और धार्मिक अभ्युदय से हैं। अणुन्नत तथा महान्नत का पालन करना दीक्षा कहलाता है। दीक्षा से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाएँ दीक्षान्वय संस्कार कहलाती हैं। मरण से निर्वाणपर्यन्त अड़तालीस प्रकार के दीक्षान्वय संस्कारों का उल्लेख है, जिसे सम्पन्न करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। १००० ये क्रमशः निम्नलिखित हैं—

- १. अवतार संस्कार द्वारा मिथ्या तत्त्व से भ्रष्ट हुआ कोई भव्य पुरुष समीचीन मार्ग ग्रहण करने के लिए सम्मुख होता है। १०३
- वृतलाभ संस्कार भव्य पुरुषों द्वारा गुरु को नमस्कार करते हुए व्रतों के समूह को प्राप्त करके की जाती है। १०४

- २२ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- स्थानलाभ संस्कार में उपवास करने वाले भव्य पुरुषों द्वारा विधिपूर्वक जिनालय
 में जिनेन्द्रदेव की पूजा कर गुरु की अनुमित से गृह गमन किया जाता है। १%
- ४. **गणप्रहण संस्कार** में मिथ्या देवताओं का विसर्जन कर उनके स्थान पर अपने मत के देवता की स्थापना की जाती है।^{१०६}
- ५. **पूजाराध्य संस्कार** पूजा और उपवास द्वारा भव्य पुरुष का पूजाराध्य संस्कार होता है। १°°
- ६. **पुण्ययज्ञा संस्कार** सद्धर्मी पुरुष के लिए किया जाता है।^{१०८}
- ७. **दृढ़चर्या संस्कार** में अपने मत के प्रन्थों का अध्ययन करने के बाद अन्य मत के शास्त्रों को सुना जाता है।^{१०९}
- ८. उपयोगिता संस्कार में दृढ़व्रती द्वारा पर्व के दिन उपवास की रात्रि में प्रतिमायोग धारण किया जाता है। ११०
- ९. उपनीत संस्कार में शुद्ध एवं भव्य पुरुषों के योग्य चिह्न को धारण किया जाता है। इसमें वेष, वृत और समय के पालन का विधान है। १११
- १०. **व्रतचर्या संस्कार** यज्ञोपवीत से युक्त भव्य पुरुष द्वारा शब्द और अर्थ दोनों का अच्छी तरह उपासकाध्ययन के सूत्रों का अभ्यास करके सम्पन्न किया जाता है।^{११२}
- ११. **व्रतावतरण संस्कार** में अध्ययनोपरान्त श्रावक द्वारा गुरु के समीप सम्यक् विधि से आभूषण आदि धारण किया जाता है।^{११३}
- १२. विवाह संस्कार में भव्य पुरुष द्वारा अपनी पत्नी को दीक्षित कर पुन: यथाविधि उसी से विवाह होता है। ११४
- १३. वर्णलाभ संस्कार अपने समान आजीविकाधारी श्रावकों के साथ सम्पर्क के अभिलाषी भव्य पुरुषों का होता है। ११५
- १४. **कुलचर्या संस्कार** द्वारा आर्य पुरुषों के उपयुक्त देवपूजन आदि छ: कार्यों में पूर्ण प्रवृत्ति रखा जाता है।^{११६}
- १५. **गृहीशिता संस्कार** भव्य पुरुष द्वारा गृहस्थाचार्य पद प्राप्त करने पर सम्पन्न किया जाता है।^{११७}
- १६. **प्रशान्तता संस्कार** में नानाप्रकार के उपवास किये जाते हैं।^{११८}
- १७. **गृहत्याग संस्कार** में विरक्त होकर योग्य पुत्र को नीति के अनुसार शिक्षा देकर गृहत्याग किया जाता है।^{११९}

- जैन_पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : २३
- १८. दीक्षाद्य संस्कार में तपोवन के लिए प्रस्थान करने वाले भव्य पुरुष को एक ही वस्त्र धारण करना होता है।^{१२०}
- १९. जिनरूपता संस्कार में गृहस्थ द्वारा वस्न त्याग कर दिगम्बर रूप धारण किया जाता है।^{१२१}

२० से लेकर ४८ तक के अन्य संस्कार गर्भान्वय संस्कार के समान सम्पन्न किये जाते हैं।^{१२२}

क्रियान्वय संस्कार— इसका तात्पर्य कर्ता के अनुरूप क्रिया से है। जो व्यक्ति संसार में अल्प समय तक रहता है अर्थात् जिसे अल्प उम्र में ही सांसारिकता से विरक्त होकर ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उसके लिए इन संस्कारों को सम्पन्न करने का विधान है। १२१ निम्नलिखित सात क्रियान्वय संस्कार हैं जिसे करने से योगियों को परम स्थान की प्राप्त होती है। १२४

- १. सज्जाति संस्कार- जब भव्य जीव दिव्य ज्ञानरूपी गर्भ से उत्पन्न होने वाले उत्कृष्ट जन्म को प्राप्त करते हैं तब सज्जाति क्रिया होती है।^{१२५} पिता के वंश की शुद्धि को 'कुल' एवं माता के वंश की शुद्धि को 'जाति' कहते हैं। कुल एवं जाति की शुद्धि को सज्जाति कहते हैं।
- २. सद्गृहित्व संस्कार में गृहस्थावस्था में व्यक्ति आलस्यरिहत होकर विशुद्ध आचरण और आत्मतेज प्राप्त करता है। अर्थात् गृहस्थ द्वारा सद्गुणों से अपनी आत्मा की शुद्धि करना सद्गृहित्व संस्कार कहलाता है।^{१२६}
- ३. पारिव्रज्य संस्कार गृहस्थ धर्म का पालन करने के उपरान्त विरक्त हुए व्यक्ति द्वारा किसी शुभ दिन, लग्न में गुरु से दीक्षा-ग्रहण करने को कहा गया है। १२७ इस संस्कार में ममता भाव त्याग कर दिगम्बर रूप ग्रहण करना होता है।
- ४. **सुरेन्द्रता संस्कार** द्वारा पारिव्रज्य के फल का उदय होने पर सुरेन्द्र पद की उपलब्धि होती है।^{१२८}
- पाम्राज्य संस्कार द्वारा चक्ररत्न के साथ निधियों एवं रत्नों से उत्पन्न हुई
 सम्पदाएँ चक्रवर्ती को प्राप्त होती हैं। १२१
- ६. आईन्त संस्कार स्वर्गावतार आदि महाकल्याणक रूप सम्पदाओं की प्राप्ति अर्थात् अर्हन्त परमेष्ठी की जो पंचकल्याणक रूप सम्पदाओं की उपलब्धि होती है उसे आईन्त संस्कार कहा गया है।^{१३०}
- ७. **परिनिर्वृत्ति संस्कार** के माध्यम से संसार के बन्धन से मुक्त हुए परमात्मा की अवस्था प्राप्त होती है। इसे परिनिर्वाण भी कहा गया है। समस्त कर्मरूपी

मल के विनष्ट होने से अन्तरात्मा की शुद्धि को ही सिद्धि अथवा मोक्ष कहते हैं। यह सिद्धि आत्मतत्त्व की प्राप्ति रूप है, अभाव नहीं। १३१

अन्त्येष्टि संस्कार- आदिपुराण में दो प्रकार की मृत्यु का उल्लेख है-शरीर-मरण अर्थात् आयु के अन्त में शरीर का त्याग और संस्कार-मरण अर्थात् व्रती पुरुषों द्वारा पापों का परित्यागा^{१३२} शरीर-मरण में ही अन्त्येष्टि संस्कार की व्यवस्था दी गयी है।^{१३२} अग्निदाह,^{१३४} शव के गाड़ने, जल में प्रवाह और पशु-पक्षियों को खाने के लिए खुले स्थान में छोड़ने की परम्परा भी थी। शव पर आत्मीय जनों द्वारा कपूर, अगरु, चन्दन आदि का उबटन लगा कर स्नान कराने का उल्लेख भी मिलता है।^{१३५} लोकाचार के अनुसार आत्मा की शान्ति के लिए जलाञ्जलि देने का भी विधान वर्णित है।^{१३६} अन्त्येष्टि संस्कार में नीहरण, व्यन्तराधिष्ठित, परिष्ठापन, ब्राह्मणभोजन आदि का उल्लेख भी है।^{१३७}

गर्भान्वय, दीक्षान्वय तथा क्रियान्वय संस्कार क्रमशः योग, ज्ञान और कर्म के तीन साधन रूप प्रतीत होते हैं, जो क्रमशः एक के सम्पन्न करने के बाद दूसरे के योग्य बनता जाता है। सम्भवतः गर्भान्वय संस्कार सामान्य श्रावकों के लिए है जिसे अधिक संस्कारों द्वारा समर्थ बनाया जाता है। दीक्षान्वय संस्कार सदाचारी ज्ञानमार्गी व्यक्तियों के लिए विहित है जो अपेक्षाकृत कम संस्कारों द्वारा समर्थ हो जाता है। क्रियान्वय संस्कार मुनियों के लिए है जो अल्प समय में ही सांसारिकता से मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इनके लिए अल्प संस्कारों की ही आवश्यकता होती है। ये तीनों संस्कार लम्बे, मध्यम और छोटे रास्ते हैं, जिनका अन्तिम लक्ष्य है मुक्ति प्राप्त करना।

जैन पुराणों में वर्णित संस्कारों का समाज से अधिक धर्म से सम्बन्ध है, लेकिन अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा देने के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व का व्यापक ध्यान रखा गया है और सामाजिक अधिकार तथा कर्तव्यों की विवेचना की गयी है। ये संस्कार मानव जीवन के परिष्कार और शुद्धि में सहायक, व्यक्तित्व के विकास को सहज, मानव शरीर को पवित्र तथा भौतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं को गित तथा अन्त में उसे जिटलताओं और समस्याओं के संसार से सरल, सम्यक् मुक्ति अर्थात् परिनिर्वाण के लिए प्रस्तुत करते हैं। ये संस्कार अनेक समस्याओं के समाधान में सहायक थे। उदाहरणार्थ आधान तथा जन्म संस्कार यौन शिक्षा तथा प्रजनन से सम्बद्ध थे, जब स्वास्थ्य विज्ञान तथा प्रजननशास्त्र का विज्ञान की स्वतन्त्र शाखा के रूप में विकास नहीं हुआ था उस समय संस्कार द्वारा ही इन शिक्षाओं को प्रदान किया जाता था। अनेक संस्कार ज्ञान तथा बौद्धिक विकास के प्रति प्रेरित करते हैं। विवाह संस्कार अनेक यौन तथा सामाजिक समस्याओं का नियमन करता है। पुरुषों के लिए सभी संस्कार विहित थे परन्तु स्त्रियाँ कुछ विशेष संस्कार ही सम्पन्न करती थीं। नवीन

जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : २५

सामाजिक व धार्मिक शक्तियों के समाज में क्रियाशील होने से संस्कार बोधगम्य नहीं रहे, जनसाधारण की अरुचि और उदासीनता से उक्त संस्कार आज हासोन्मुख हैं। आज समाज परिवर्तित हो चुका है, उसी के अनुरूप मानव के विचारों, भावों, महत्त्वाकांक्षाओं आदि में भी परिवर्तन हो चुके हैं। नवीन विचारधारा के अनुरूप परिवर्तित हुए बिना संस्कार आज जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकते। लेकिन जीवन एक कला है तथा इसके सुधार के लिए सुनियोजित प्रयत्न आवश्यक है, यह एक अनिवार्य तथा शाश्वत सत्य है।

सन्दर्भ :

- १. हिन्दू संस्कार; राजबली पाण्डेय, वाराणसी, १९६६ ईस्वी, पृ० १८.
- २. आक्सफोर्ड डिक्शनरी; Sacrament शब्द.
- आदिपुराण; आचार्य जिनसेन, सम्पा०- पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, ३९/२५.
- ४. जैमिनीसूत्र; ३/१/३, पी०वी०काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र; भाग-२, पूना १९६२ ईस्वी, पृ० १९०.

हिन्दू संस्कार; पृ० १७-१८.

- ५. तन्त्रवार्तिक; कुमारिल भट्ट, पृ० १०७८.
- ६. वेदान्तसूत्र; शङ्करभाष्य, पृ० ११४.
- ७. **ओ०पु०**; ३९/२५.
- आदिपुराण में प्रतिपादित भारतः नेमिचन्द शास्त्री, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी १९६८ ईस्वी, पृ० १६५.
- ९. आदिपुराण, ३९/११९-१२२.
- १०. वही, ३९/२०८-२११.
- ११. वही, ३८/५१-५३.
- १२. **गौतम धर्मसूत्र**; १/८२२.
- १३. **हिन्दू संस्कार**; पृ० १९-२६, काणे, पूर्वोक्त, पृ० ११३-९४.
- १४. आधुनिक यूरोप का इतिहास; हीरालाल सिंह, रामवृक्ष सिंह, नन्दिकशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी १९५५ ईस्वी.
- १५. **बौधायन गृह्यसूत्र**; १४/६/१, <mark>याज्ञवल्क्य स्मृति</mark>; १/११, अथर्ववेद; ५/२५/३, **बृहदारण्यक उपनिषद्**; ६/४/२१.

- २६ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- १६. याज्ञ ०, १/१०-११, विष्णु धर्मसूत्र; २/३, पारस्कर गृह्यसूत्र; १/११, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र; ८/१०-११, मनुस्मृति, २/१६.
- १७. आप०गृ०सू०; १/१३, २/७, १४/९, वायु पुराण; ९६/१२, ब्रह्माण्ड पुराण; ३/७१/७२.
- १८. पा०गृ०सू०; १/१४/२, बौ०गृ०सू०; १/९/१, आश्वलायन गृह्यसूत्र, १/१४/१-९, गौ०ध०सू०; ८/७४, याज्ञ०; १/११, विष्णु पुराण; ३/१३/६, ग्यारहवीं सदी का भारत, जयशंकर मिश्र, वाराणसी १९६८ ईस्वी, पृ० २२०.
- १९. स्मृति चन्द्रिका; १, पृ० १९-२०; संस्कार रत्नमाला; पृ० ८९६, संस्कार प्रकाश; पृ० २०१-३.
- २०. शतपथ ब्राह्मण; ६/१/३/९, याज्ञ ०; १/२, मनु ०; २/३०,
- २१. पा०गृ०स्०; १/१७, मनु०; २/३४.
- २२. आश्व०ध०सू०; १/१६/१.
- २३. पा०गृ०सू०; २/१, मनु०; २/३५, आश्व०गृ०सू०; १/१७/१-८.
- २४. बौ०गृ०सू०; १/१२, संस्कार प्रकाश; पृ० २५८.
- २५. स्मृति चन्द्रिका; १, पृ० २६, संस्कार रत्नमाला, पृ० ८९०.
- २६. हिन्दू संस्कार, पृ० १८०.
- २७. आप०गृ०सू०; १/५/१५, वीरमित्रोदय; १, पृ० ४१५.
- २८. वि**॰पु॰**; ३/१३/९९, ५/२१/१९, **ब्र॰पु॰**; ३/३५/३१/१४.
- २९. मनु•; २/७०.
- ३०. **आश्व०गृ०सू०**; १/१८.
- ३२. वीरमित्रोदय; पृ० ५३४, याज्ञ o; १/४९.
- ३३. पा०गृ०स्०, १/८/१.
- ३४. बौ०गृ०सू०; १/४३; वि०पु०; ३/१३/७-१९, मत्स्यपुराण; ३९/१७.
- ३५. आधानं नाम गर्भादौ संस्कारो मन्त्र पुर्वकः। पत्नीमृतुमतीं स्नातां पुरस्कृत्यार्हदिज्यमा॥ — आ०**५०**; ३८/७०.
- ३६. **आ०पु०**; ३८/७१-७२,४०/३-४-५,७६,९२-९५ तुलनीय **अथर्ववेद,** ३/२३/२.
- ३७. आ०पु०; ३८/७७-७९, १२/१८७, ४०/९६.

- जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : २७
- ३८. आ०प्०; ३८/८०-८१, ४०/९७-१००.
- ३९. **आ०५०**; ३८/८२, तुलनीय **ऋग्वेद**; १०/९/१-३, **तैत्तिरीय संहिता**; ४/१/५/११.
- ४०. आ०पु०; ३७/८३-८४, ४०/१०२-१०७.
- ४१. **आ०पु०**; ३८/८५, ४०/१०८-१३१, **हरिवंशपुराण**; पुन्नाटसंघीय आचार्य जिनसेन, सम्पा० अनु०- पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, ८/१०५.
- ४२. आ०पु०; ३८/८७-८९, ४०/१३२-१३३.
- ४३. आ०पु०; ३८/९०-९२, ४०/१३४-१३९.
- ४४. आ०पु०; ३८/९३-९४, ४०/१४०.
- ४५. आ०पु०; ३८/९५, ४०/१४१-१४२.
- ४६. आ०पु०; ३८/९६-९७, ४०/१४३-१४६.
- ४७. आ०पु०; ३८/९८-१०१, ४०/१४७-१५१.
- ४८. आ०पु०; ३८/१०२-३.
- ४९. आ०पु०; ३८/१०४-८, ४०/१५३-१६४.
- ५०. **आ०५०**; ३८/११२, २१-२२, ३९/९४-९५, ४०/१७२, ४१/३१, **ह०५०**; ४२/५.
- ५१. आ०पु०; ३८/१०९-१२०, ४०/१६५-१७३.
- ५२. आ०पु०; ३८/१२१-१२६.
- ५३. **पद्मपुराण**; आचार्य रविषेण, सम्पा० अनु०- पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, ३/५१.
- ५४. **आ॰पु॰**; १५/६२-६४, **उत्तर पुराण**; आचार्य गुणभद्र, सम्पा॰ अनु०-पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, ६५/७९.
- ५५. आश्व०गृ०सू०; १/६, बौ०ध०सू०; १/११, याज्ञ०; १/५६-६१, मनु०; ३/२१, वि०पु०; ३/१०/२४.
- ५६. आ०पु०; ४५/५४, ४४/३२, ४३/१९६, ह०पु०; ३१/४३-५५.
- ५७. ह०पु०; २९/६६-६७, ४५/३७, प०पु०; ८/१०१-१०८, ९३/१८.
- ५८. प०पु०; ८/७८-८०, १०/१०, आ०पु०; ४५/३४.
- ५९. **उ०पु०**; ७०/११५.

- २८ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३
- ६०. **ह०पु०**; ४२/२४-२६, ७८-९६, ४४/२३-२४, २९-३२, **उ०पु०**; ६८/६००.
- ६१. **आ०पु०**; १६/२४७, ७/१०६, १०/१४३, **जैन आगम में भारतीय** समाज; जगदीश चन्द्र जैन, वाराणसी १९६५ ईस्वी, पृ० २६५-२६६.
- ६२. **उ०पु०**; ६७/२२१, **प०पु०**; ६/४१ तुलनीय— **आप०गृ०सू०**; ३/२०.
- ६३. **प०पु०**; ६/४२, १७/५३, तुलनीय— **वा०पु०**; ३३/७, **वि०पु०**; ३/१०/१६-२४.
- ६४. प०पु०; ३८/९-१०, आ०पु०; ८/३६.
- ६५. आ०पु०; ३८/१३५-१४१ ६६. आ०पु०; ३८/१३५-१४१.
- ६७. आ०पु०; ३८/१४२-१४३ ६८. आ०पु०; ३८/१४४-१४७.
- ६९. आ०पु०; ३८/१४८-१४९. ७०. आ०पु०; ३८/१५०-१५६.
- ७१. **आ०पु०**; ३८/१५७-१५८. ७२. **आ०पु०**; ३८/१५०-१६०.
- ७३. आ०पु०; ३८/१६१-१६३. ७४. आ०पु०; ३८/१६४-१६५.
- ७५. आ०पु०; ३८/१६६-१६७. ७६. आ०पु०; ३८/१६८-१७१.
- ७७. आ०प०; ३८/१७२-१७४. ७८. आ०प०; ३८/१७५-१७७.
- ७९. आ०पु०; ३८/१७८-१८५. ८०. आ०पु०; ३८/१८६-१८९.
- ८१. आ०पु०; ३८/१९०-१९४ ८२. आ०पु०; ३८/१९५-१९८.
- ८३. आ०पु०; ३८/१९९. ८४. आ०पु०; ३८/२००.
- ८५. आ०पु०; ३८/२०३-२१३. ८६. आ०पु०; ३८/२१४-२१६.
- ८७. आ०पु०; ३८/२१७-२२४. ८८. आ०पु०; ३८/२२५-२२८.
- ८९. आ०पु०; ३८/२२९-२३ ९०. आ०पु०; ३८/२३१.
- ९१. आ०पु०; ३८/२३२ ९२. आ०पु०; ३८/२३३.
- ९३. आ०पु०; ३८/२३४. ९४. आ०पु०; ३८/२३५-२५२.
- ९५. आ०पु०; ३८/२५३-२६५. ९६. आ०पु०; ३८/२६६-२९३.
- ९७. **आ०पु०**; ३८/२९५-३००. ९८. **आ०पु०**; ३८/३०२-३०३.
- ९९. आ०पु०; ३८/३० १००. आ०पु०; ३८/३०५-३०७.
- १०१.आ०पु०; ३८/३०८-३०९
- १०२.आ०पु०; ३९/१-५, उ०पु०; ६३/३०४.

जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन : २९

१०३.**आ०पु०**; ३९/७.

१०५.**आ०पु०**; ३९/३७-४४.

१०७.**आ०पु०**; ३९/४९.

१०९.आ०पु०; ३९/५

१११.आ०पु०; ३९/५३-५६.

११३.आ०पु०; ३९/५८.

११५.**आ०पु०**; ३९/६१.

११७.**आ०पु०**; ३९/७३-७४.

११९.आ०पु०; ३९/७६.

१२१.**आ०पु०**; ३९/७८.

१२३.आ०पु०; ३९/८१.

१२४.आ०पु०; ३९/२०७, उ०पु०; ६३/३०५.

१२५.आ०पु०; ३८/८२-९८. १२६. आ०पु०; ३९/९९-१५४.

१२७.आ०पु०; ३९/१५५-२००. १२८.आ०पु०; ३९/२०१.

१२९.**आ०पु०**; ३९/२०२. १३०. **आ०पु०**; ३९/२०३-२०४.

१३१.**आ०पु०**; ३९/२०५-२०६. १३२. **आ०पु०**; ३९/१२२.

१३३.**आ०पु०**; ६८/७०३.

१३४.प०पु०; ७८/२-८, ११८/१२३, ह०पु०; ६३/५३-७२, उ०पु०; ७५/२२७, महानिशीथ; पृ० २५०.

१३५.प०पु०; ७८/८, ह०पु०; ६३/५५.

१३६.ह०पु०; ६३/५२.

१३७. 'प्राचीन साहित्य में मृतक कर्म'; जगदीश चन्द्र जैन, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता १९६१ ईस्वी, पृ० २३२-२३४.

१०४. **आ०पु०**; ३९/३६.

१०६. आ०पु०; ३९/४५-४८.

१०८. आ०पु०; ३९/५०.

११०. **आ०पु०**; ३९/५२.

११२. आ०पु०; ३९/५७.

११४. आ०पु०; ३९/५९-६०.

११६. आ०पु०; ३९/७२.

११८. आ०पु०; ३९/७५.

१२०. आ०पु०; ३९/७७.

१२२. आ॰पु॰; ३९/७९.

स्थानकवासी सम्प्रदाय के छोटे पृथ्वीचन्द्रजी महाराज की परम्परा का इतिहास

डॉ० विजय कुमार*

श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजा के विरुद्ध अपना स्वर मुखर करनेवालों में क्रान्तदर्शी लोकाशाह प्रथम व्यक्ति थे। समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि लोकाशाह का जन्म ईसा की १५वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में हुआ था। लोकाशाह ने तत्कालीन समाज में व्याप्त जिनप्रतिमा, जिनप्रतिमा-निर्माण, पूजन, जिनभवन-निर्माण और जिनयात्रा की हिंसा से जुड़ी हुई प्रवृत्तियों को धर्मविरुद्ध बताया और लोकागच्छ की स्थापना की। किन्तु कालान्तर में ये सभी प्रवृत्तियाँ लोकागच्छ में समाहित हो गयीं। परिणामत: क्रियोद्धार करके स्थानकवासी परम्परा का निर्माण करनेवाले जीवराजजी, लवजीऋषि, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी आदि लोकागच्छ से अलग हो गये और उनके साथ मूर्तिपूजा विरोधी समाज जुड़ गया।

स्थानकवासी परम्परा में क्रियोद्धारक पूज्य श्री धर्मदासजी का उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्मदासजी का जन्म वि०सं० १७०१ में अहमदाबाद के समीपस्थ सरखेजा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जीवनदास एवं माता का नाम श्रीमती डाहीबाई था। आठ वर्ष की आयु में जैन यति की पाठशाला में आपने अध्ययन प्रारम्भ किया। व्यावहारिक एवं नैतिक अध्ययन के साथ आपने धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की। लोकागच्छीय यति श्री केशवजी एवं श्री तेज सिंह से दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को जाना। कुछ समयोपरान्त आप पोतियाबन्ध श्रावक श्री कल्याणजी के सम्पर्क में आये और उनके विचारों से प्रभावित हुए। उस समय पोतियाबन्ध पंथ का राजस्थान एवं गुजरात में बहुत तेजी से प्रभाव बढ़ रहा था। जयमाल के पुत्र प्रेमचन्द इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। श्री कल्याणजी के प्रभाव में आकर आप पोतियाबन्ध पंथ से जुड़ गये। मुनि हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' का मानना है कि आपने दो वर्ष तक पोतियाबन्ध श्रावक के रूप में जीवन व्यतीत किया था।

तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी धर्मदासजी को भगवतीसूत्र का अध्ययन करते समय यह उल्लेख मिला कि भगवान् महावीर का शासन २१ हजार वर्षों तक चलेगा। भगवतीसूत्र के इस उद्धरण ने उनके मन को विचलित कर दिया और वे सच्चे संयमी की खोज में निकल पड़े। इस सन्दर्भ में वे क्रियोद्धारक श्री लवजीऋषि एवं श्री धर्मसिंहजी से मिले, किन्तु दोनों क्रियोद्धारकों से पूर्ण सहमति नहीं हो पायी। वि०सं० १७१९ में आप मालवा पहुँचे जहाँ क्रियोद्धारक

प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ , आई० टी० आई० रोड, वाराणसी-२२१००५

स्थानकवासी सम्प्रदाय के छोटे पृथ्वीचन्द्रजी महाराज की परम्परा का इतिहास : ३१

जीवराजजी से कार्तिक शुक्ला पंचमी को २० अन्य साथियों के साथ आपने आहिती दीक्षा ग्रहण की। वि०सं०१७२१ माघ शुक्ला पंचमी को उज्जैन में आप संघ के आचार्य पर पर प्रतिष्ठित हुये।

आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में दूसरी मान्यता श्री जीवनमुनिजी की है। उनका मानना है कि 'तत्कालीन क्रियोद्धारक श्री लवजीऋषिजी एवं श्री धर्मसिंहजी से पूर्ण सहमित नहीं होने पर आपने स्वयं दीक्षा ले ली।' ऐसी मानयता है कि संयमजीवन की प्रथम गोचरी में एक कुम्हार के घर से आपको राख की प्राप्त हुई जिसे आपने सहज भाव से स्वीकार कर लिया। गोचरी में प्राप्त राख को लेकर आप अपने गुरु की सेवा में उपस्थित हुये। राख को देखकर गुरुदेव बोले- तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। प्रथम दिवस ही तुमको राख जैसी पिवत्र भिक्षा मिली है। इस कलियुग में तुम धर्मरक्षा करने में समर्थ होगे और तुम्हारे द्वारा धर्म का प्रचार एव प्रसार होगा। तुम्हारे अनुयायी बहुत अधिक संख्या में बढेंगे। जिस प्रकार प्रत्येक परिवार में हमें राख मिल सकती है उसी प्रकार तुम्हें ग्राम-ग्राम में शिष्य मिलेंगे। धर्मदासजी के ९९ शिष्यों में २२ शिष्य प्रमुख थे। इन २२ शिष्यों से ही 'बाईस सम्प्रदाय' की स्थापना हुई।

धर्मदासजी के देवलोक होने के सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि धार में एक क्रिन ने अपना अन्त समय जानकर संथारा ग्रहण कर लिया, किन्तु संथारा व्रत पर वह अडिंग नहीं रह पाया। व्रत की अशातना जानकर धर्मदासजी धार पहुँचे और उस मुनि की जगह स्वयं संथारा पर बैठ गये। परिणामत: आठवें दिन वि०सं० १७७२ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को ७२ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य छोटे पृथ्वीचन्द्रजी

मेवाड़ की यशस्वी सन्त परम्परा में मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी (छोटे) का नाम सन्तरत्नों में गिना जाता है। आप पूज्य धर्मदासजी के छठे शिष्य थे। आपने तत्कालीन साधु समाज में व्याप्त शिथिलता को दूर कर क्रियोद्धार किया और मेवाड़ परम्परा के आद्य प्रवर्तक कहलाये। आपके जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। आपके स्वर्गवास के पश्चात् द्वितीय पट्टधर आचार्य श्री दुर्गादासजी हुये। द्वितीय पट्टधर के रूप में एक नाम और मिलता है— मुनि श्री हरिदासजी/हरिरामजी। द्वितीय पट्टधर के रूप में यह नाम 'गुरुदेव पूज्य श्री माँगीलालजी महाराज: दिव्य व्यक्तित्व' नामक पुस्तक में मिलता है। पुस्तक के रचियता मुनि श्री हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' हैं। 'प्रवर्तक श्री अम्बालालजी अभिनन्दन ग्रन्य' में द्वितीय पट्टधर मुनि श्री दुर्गादासजी और तृतीय पट्टधर हरिदासजी/हरिरामजी को माना गया है जिसकी पुष्टि आचार्य हस्तीमलजी द्वारा रचित पुस्तक 'जैन आचार्य चरितावली' से भी श्रोती है। चतुर्थ पट्टधर के रूप में मुनि श्री गंगारामजी, पंचम पट्टधर के रूप में मुनि श्री रामचन्द्रजी का नाम आता है। मुनि श्री रामचन्द्रजी के पश्चात् आचार्य पट्ट पर मुनि श्री नारायणदासजी विराजित हुये, जो छठवें पट्टधर थे। सातवें पट्टधर मुनि श्री पूरणमलजी हुये।

३२ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

आपके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री रोड़मलजी संघ के आचार्य पद पर पदासीन हुये।

आचार्य श्री रोड्रमलजी

आपका जन्म वि०सं० १८०४ में नाथद्वारा के मध्य देवर (देपुर) नामक ग्राम में हुआ। पिता का नाम श्री डूंगरजी और माता का नाम श्रीमती राजीबाई था। वि०सं० १८२४ के वैशाख में बीस वर्ष की अवस्था में देवर ग्राम में ही मुनि श्री हरिजी स्वामी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। मुनि श्री हरिजी स्वामी के शिष्यत्व में दीक्षित होने के सम्बन्ध में मुनि श्री सौभाग्यमुनि जी 'कुमुद' का मानना है कि मुनि श्री रोड़मलजी के गुरु मुनि श्री पूरणमलजी थे न कि मुनि श्री हरिस्वामीजी। मुनि श्री के इस कथन की पृष्टि वि०सं० १९३८ में गुलाबचन्दजी द्वारा लिखित पट्टावली में 'पूरोजी का रोड़ीदास' किये गये उल्लेख से भी होती है।

आपने अपने जीवनकाल में ४३ मासखमण, २३० अठाई, १९५ पंचोला, २५८ चौला, ३४५ तेला, ९९० बेला और १५०० उपवास किये। अपने संयमजीवन में आप बहुत दिनों तक एकाकी विचरण करते रहे किन्तु एकाकी विचरण करने के कारण का कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' का मानना है कि अन्य मुनिराजों का देहावसान हो गया हो या कोई दीक्षार्थी उपलब्ध न हुआ हो, अत: उन्हें एकाकी विहार करना पड़ा हो। आपका विहार क्षेत्र कोटा, आमेट, सनवाड़, नाथद्वारा, उदयपुर आदि रहा। मेवाड़ से बाहर विहार करने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है और न ही आपने वहाँ कितने चातुर्मास किये आदि की जानकारी उपलब्ध होती है। हाँ! इतना स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि आपने अपने संयमजीवन के अन्तिम नौ वर्ष उदयपुर में स्थिरवास के रूप में बिताये। वि०सं० १८६१ में आपका स्वर्गवास हुआ। मुनिश्री नृसिंहदासजी आपके प्रमुख शिष्य थे।

आचार्य श्री नृसिंहदासजी

आचार्य श्री रोड़मलजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् उनके पाट पर मुनि श्री नृसिंहदासजी विराजित हुये। आपका जन्म भीलवाड़ा जिलान्तर्गत रामपुर ग्राम में हुआ। आपकी जन्म- तिथि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। आपकी माता का नाम श्रीमती गुमानबाई और पिता का नाम श्री गुलाबचन्दजी खत्री था। वि०सं० १८५२ मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी के दिन लावा (सरदारगढ़) में आचार्य श्री रोड़मलजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के समय आप गृहस्थावस्था में थे। मुनि श्री सौभाग्यमलजी 'कुमुद' के अनुसार दीक्षा के समय आपकी उम्र २०-२५ वर्ष की थी। इस आधार पर आपकी जन्म-तिथि वि०सं०

^{*.} यह परम्परा मुनिश्री हस्तीमलजी म०सा० द्वारा लिखित 'पूज्य गुरुदेव श्री माँगीलालजी म० : दिव्य व्यक्तित्व' पर आधारित है।

१८२७ से १८३२ के बीच की होनी चाहिए। आपने अपने संयमजीवन में कई मासखमण, पन्द्रह व तेईस दिन के तप किये। आपकी कई रचनायें उपलब्ध होती हैं जिनमें प्रथम रचना है- रोड़जी स्वामी २१ गुण। इसके अतिरिक्त 'भगवान महावीर रा तवन, 'सुमतिनाथ स्तवन', 'श्रीमती सती' आदि हैं। वि०सं० १८८९ फाल्गून कृष्णा अष्टमी को उदयप्र में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपने संयमजीवन में कुल ३७ चौमासे किये— नायद्वारा - ९, सनवाड़ - १, पोटलां -१, गंगापुर -१ लावार (सरदारगढ़)-२, देवगढ़-१, रायपुर-२, कोटा-१ भीलवाड़ा-२, चित्तौड़-१ उदयपुर-१६ । आपके २२ शिष्य हुए जिनमें से मुनि श्री मानमलजी आपके पाट पर विराजित हुए।

आचार्य श्री मानमलजी

आपका जन्म वि०सं० १८६३ कार्तिक शुक्ला पंचमी को देवगढ़ मदारिया में हुआ। आपके पिता का नाम श्री तिलोकचन्द्रजी गाँधी और माता का नाम श्रीमती धन्नादेवी था। ९ वर्ष की उम्र में वि०सं० १८७२ कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन आचार्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री नृसिंहदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् मेवाड़ परम्परा के आचार्य पर आप समासीन हुये। आप एक कवि थे। आपकी कुछ रचनाएँ राजस्थानी ्शैली में उपलब्ध होती हैं जिनमें से एक है 'गुरुगुण स्तवन।' वि०सं० १८८५ में आप द्वारा लिखित एक हस्तप्रति भी प्राप्त होती है जो 'मुनि श्री अम्बालालजी म० अभिनन्दन ग्रन्थ' में प्रकाशित है।

आपने कुल ७० वर्ष संयमजीवन व्यतीत किया। ७९ वर्ष की अवस्था में १९४२ कार्तिक शुक्ला पंचमी को नाथद्वारा में आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार एक ही तिथि कार्तिक शुक्ला पंचमी को जन्म, दीक्षा और देवलोक गमन आपके जीवन की अनोखी घटना है।

आपकी जन्म-तिथि के विषय में मुनि हस्तीमलजी 'मेवाड़ी' की यह मान्यता कि आपका जन्म वि०सं० १८८३ में हुआ था जो प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि इस तिथि के अनुसार आपका स्वर्गवास वि०सं० १९६३ में मानना पड़ेगा, जो कि संगत नहीं है। इस सम्बन्ध में श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' का कथन समीचीन प्रतीत होता है। उनका कहना है कि वि०सं० १९४७ में पूज्य श्री एकलिंगदासजी की दीक्षा हुई तो क्या उस समय श्री मानमलजी स्वामी वहाँ उपस्थित थे । श्री मानमलजी स्वामी का स्वर्गवास १९४२ में हो चुका था, अत: उनकी उपस्थिति का प्रश्न ही नहीं उठता। ४

यहाँ पट्ट परम्परा के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आचार्य श्री ।नृसिंहदासजी के पश्चात् उनके पाट पर मुनि श्री मानमलजी स्वामी आचार्य बनें– यह तथ्य श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' के अनुसार है, जबकि आचार्य श्री हस्तीमलजी ने 'जैन आचार्य चरितावली' में आचार्य श्री निसंहदासजी के पश्चात आचार्य श्री एकलिंगदासजी को उनका 38

पट्टधर स्वीकार किया है। मुनि श्री ऋषभदासजी के समय लिखी गयी संक्षिप्त और बड़ी पट्टाविलयों में श्री मानजी स्वामी का कोई उल्लेख नहीं है। अत: ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि श्री मानजी स्वामी और तपस्वी श्री सुरजमलजी के संघाड़े अलग-अलग रहे हों। श्री मानमलजी स्वामी के बाद एक वर्ष तक संघ की बागडोर मृनि श्री ऋषभदासजी के पास रही- ऐसा उल्लेख मिलता है।

मुनि श्री सूरजमलजी

आपका जन्म वि०सं० १८५२ में देवगढ़ के कालेरिया ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री थानजी और माता का नाम श्रीमती चन्दुबाई था। वि०सं० १८७२ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी के दिन आचार्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्यत्व में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने १५ दिन, ३५ दिन और ३७ दिन के तप के साथ एक बार पाँच महीने का दीर्घ तप भी किया था। आपके द्वारा किये गये तपों का वर्णन श्री ऋषभदासजी द्वारा लिखित 'रेसी लावणी' में मिलता है। आपने ३६ वर्ष निर्मल संयमजीवन का पालन किया। वि०सं० १९०८ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

मृनि श्री ऋषभदासजी

आपका जन्म कब, कहाँ, और किसके यहाँ हुआ? इसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। जहाँ तक दीक्षा समय और दीक्षा गुरु का प्रश्न है तो इसकी भी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमूद' ने दो पट्टावलियों के आधार पर आपको मुनि श्री सूरजमलजो का शिष्य माना है, किन्तु यह समुचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि पट्टावितयों में पट्ट परम्परा दी रहती है न कि शिष्य परम्परा। हाँ! उनका यह कथन कि मृनि श्री ऋषभदासजी पुज्य श्री नृसिंहदासजी के शिष्य हुये हों तो भी तपस्वी श्री सूरजमलजी के प्रति वे शिष्यभाव से ही अनन्यवत् बरतते हों, ऐसा सुनिश्चित अनुमान होता है— समुचित जान पड़ता है। आपका स्वर्गवास वि०सं० १९४३ में नाथद्वारा में हुआ, यह उल्लेख वि०सं० १९६८ में छपी एक पस्तिका- 'पुज्य पद प्रदान करने का ओच्छन' में मिलता है।

आप द्वारा रचित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं-

कृति	रचना वर्ष	स्थान
आवे जिनराज तोरण पर आवे	वि०सं० १९१२	रतलाम
अज्ञानी थे प्रभु न पिछाण्यो रे	वि०सं० १९१२	खाचरौंद
चतुर नर सतगुर ले सरणां	वि०सं० १९१२	,,
फूलवन्ती नी ढाल	-	
देव दिन की दोय ढाल	_	_ ,
सागर सेठ नी ढाल	वि०सं० १९०४	रायपुर (मेवाड़)

स्थानकवासी सम्प्रदाय के छोटे पृथ्वीचन्द्रजी महाराज की परम्परा का इतिहास : ३५

रूपकुंवर नुं चौढाल्यो वि०सं० १८९७ उदयपुर तपस्वी जी सूरजमलजी म० रा गुरु वि०सं० १९०८ -

आपके प्रमुख शिष्यों में मुनि श्री बालकृष्णजी का नाम आता है।

मुनि श्री बालकृष्णजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। आपका जन्म, आपकी दीक्षा आदि किसी भी तथ्य की जानकारी उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध जानकारी इतनी है कि आप मुनि श्री ऋषभदासजी के शिष्य थे और दीक्षोपरान्त गुजरात काठियावाड़ आदि क्षेत्रों में आपने अधिक धर्म प्रचार किया। संभवत: दूरस्थ प्रदेश में रहने के कारण ही आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। मुनि श्री गुलाबचन्दजी आपके एक काठियावाड़ी शिष्य हुये हैं। 'ओच्छव की पुस्तिका' से यह ज्ञात होता है कि आपका स्वर्गवास वि०सं० १९४९ में हुआ।

मुनि श्री गुलाबचन्दजी

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। हाँ! इतना उपलब्ध होता है कि आप मुनि श्री बालकृष्णजी के शिष्य थे। ऐसी जनश्रुति है कि आप मोरबी दरबार के पुत्र थे।

मुनि श्री वेणीचन्दजी

आपके विषय में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। आपका जन्म उदयपुर के चाकूड़ा में हुआ। कब हुआ इस सम्बन्ध में कोई तिथि उपलब्ध नहीं होती है। आप मुनि श्री ऋषभदासजी के शिष्यत्व में दीक्षित हुये। 'आगम के अनमोल रत्न' में आपके स्वर्गवास की तिथि वि०सं० १९६१ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी दी गयी है और स्थान चैनपुरा बताया गया है। आपका विहार क्षेत्र मेवाड़ ही रहा। आपके दो शिष्य हुये– मुनि श्री एकलिङ्गदासजी और मुनि श्री शिवलालजी।

आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी

आपका जन्म वि०सं० १९१७ ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को चित्तौड़गढ़ के संगसेरा नाम ग्रामक में हुआ। आपके पिता का नाम श्री शिवलालजी और माता का नाम श्रीमती सुरताबाई था। आप बालब्रह्मचारी ही थे। माता-पिता के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् वि०सं० १९४८ फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा दिन मंगलवार को मुनि श्री वेणीचन्द्रजी के सान्निध्य में अकोला में आप दीक्षित हुये। दीक्षोपरान्त आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। मुनि श्री मानमलजी स्वामी और मुनि श्री ऋषभदासजी के पश्चात् मेवाड़ साधु व श्रावक समाज में विखराव-सा आ गया था। फलत: चतुर्विध संघ को आचार्य की कमी महसूस होने लगी।

३६ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

मुनि श्री तेजिसंहजी सम्प्रदाय के मुनि श्री कालूरामजी ने भी श्रावकों को इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इस सम्बन्ध में वि०सं० १९६८ पौष सुदि दशमी को सनवाड़ में सभी मेवाड़ के स्थानकवासी सन्तों का समागम हुआ जिसमें ४० गाँवों के श्रावक-श्राविकाओं ने भी भाग लिया। इस समागम में आचार्य पद हेतु मुनि श्री एकिलङ्गदासजी का नाम मनोनित किया गया और उसी वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी दिन गुरुवार की तिथि आचार्यपद समारोह हेतु निर्धारित की गयी। इस प्रकार निर्धारित तिथि को राशमी में आचार्य पद चादर महोत्सव का आयोजन किया गया। महोत्सव में मुनि श्री कालूरामजी ने पूज्य पछेवड़ी (चादर) हाथ में लेकर सकल संघ से निवेदन किया कि सम्प्रदाय को उन्नत बनाने के लिए निम्न तीन बातें आवश्यक हैं—

- १. गादीधर की निश्रा में ही सभी सन्त दीक्षित हों।
- २. सन्त और सितयाँ चातुर्मीसिक आज्ञा पूज्यश्री से ही लें।
- सम्प्रदाय से बहिष्कृत सन्त-सितयों का आदर न करें।

सकल संघ ने उपर्युक्त तीनों नियम को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् सभी मुनिराजों ने पछेवड़ी पूज्य श्री एकलिङ्गदासजी के कन्धों पर ओढ़ाई। इस अवसर श्री मोतीलाल वाडीलाल शाह भी उपस्थित थे। उस चादर महोत्सव के अवसर पर श्रावक-संघ ने सम्प्रदाय के हित में जो निर्णय लिया वह इस प्रकार हैं -

- १. परम्परागत आम्नाय के अनुसार प्रतिदिन प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स का ध्यान, पक्खी के दिन १२ लोगस्स का ध्यान, बैठती चौमासी, फाल्गुनी चौमासी पर दो प्रतिक्रमण और २० लोगस्स का ध्यान, संवत्सरी पर दो प्रतिक्रमण और ४० लोगस्स का ध्यान करना चाहिए।
- २. दो श्रावण हों तो संवत्सरी भाद्रपद में तथा भाद्रपद दो हों तो संवत्सरी दूसरे भाद्रपद में करनी चाहिए।
- सन्त-सतीजी के चातुर्मास की विनती आचार्य श्री के पास करनी चाहिए।
- अाचार्य उपस्थित हों तो अन्य साधुओं का व्याख्यान नहीं हो। व्याख्यान आचार्य श्री
 का ही होना योग्य है।
- ५. किसी आडम्बर के प्रभाव में आकर अपनी सम्प्रदाय की आम्नाय नहीं छोड़ना।
- दीक्षा लेने के भाव हों तो अपनी ही सम्प्रदाय में दीक्षा लेना।

मुनि श्री मोतीलालजी और मुनि श्री माँगीलालजी आपके प्रमुख शिष्य थे। ३९ वर्ष संयममय जीवन व्यतीत कर वि०सं० १९८७ श्रावण कृष्णा द्वितीया को प्रातः ९ बजे आपने ऊंटाला (बल्लभनगर) में सामाधिपूर्वक स्वर्ग के लिए प्रयाण किया। आपने अपने संयमजीवन में जितने चातुर्मास किये उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

वि० सं०	स्थान	वि० सं०	स्थान
१९४८	सनवाड़	१९६८	अकोला
१९४९	आमेट	१९६९	भादसौड़ा
१९५०	राशमी	१९७०	घासा
१९५१	सनवाड़	१९७१	मोही
१९५२	ऊंटाला	१९७२	सनवाड़
१९५३	रायपुर	१९७३	मालकी
१९५४	अकोला	१९७४	राजाजी का करेड़ा
१९५५	ऊंटाला	१९७५	जावरा
१९५६	राजाजी का करेडा	१९७६	सनवाड़
१९५७	सनवाड़	१९७७	नाथद्वारा
१९५८	उदयपुर	१९७८	देलवाड़ा
१९५९	रायपुर	१९७९	रायपुर
१९६०	सनवाड़	१९८०	देवगढ़
१९६१	बदनौर	१९८१	कुंवरिया
१९६२	रायपुर	१९८२	अकोला
१९६३	गोगुंदा	१९८३	ऊंटाला
१९६४	ऊंटाला	१९८४	छोटी सादड़ी
१९६५	रायपुर	१९८५	रायपुर
१९६६	सरदारगढ़	१९८६	मावली
१९६७	देलवाड़ा	१९८७	ऊंटाला

आचार्य श्री माँगीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९६७ पौष अमावस्या दिन गुरुवार को राजस्थान के राजकरेड़ा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री गम्भीरमल संचेती और माता का नाम श्रीमती मगनबाई था। वि०सं० १९७८ वैशाख शुक्ला तृतीया दिन गुरुवार को रायपुर में आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के शिष्यत्व में आपने आईती दीक्षा अंगीकार की। आपके साथ आपकी माताजी भी दीक्षित हुई थीं। आपकी माता महासती फूलकुँवरजी की शिष्या बनीं। वि०सं० १९९३ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को मुनि श्री मोतीलालजी के आचार्य पद समारोह के दिन ही आप संघ के युवाचार्य मनोनीत हुये, किन्तु कुछ वैचारिक भिन्नता के कारण आचार्य श्री मोतीलालजी ने युवाचार्य पद को निरस्त कर दिया और आप श्री को सम्प्रदाय का भावी शासक मानने से इन्कार कर दिया। फलत: आपने संघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। यद्यपि आगे चलकर आपके शिष्य श्री हस्तीमलजी आदि ढाणा-३ श्रमण संघ में सम्मिलत

हो गये । जहाँ तक मोतीलालजी के आचार्य बनने की बात है तो इस सम्बन्ध में मुनि हस्तीमलजी ने 'पूज्य गुरुदेव श्री माँगीलालजी म०: दिव्य व्यक्तित्व' नामक पुस्तक में लिखा है कि मुनि श्री मोतीलालजी ने जीवनपर्यन्त पूज्य पद लेने का त्याग कर रखा था। इसलिए आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी ने एक पत्र मुनि श्री माँगीलालजी को पूज्य पद देने के लिए अपने हस्ताक्षरों सहित लिखा था और साक्षी के रूप में महासती गोदावतीजी एवं नीमचवाले श्रावकों के हस्ताक्षर भी उस पत्र पर करवाये थे। दूसरी ओर 'पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी अभिनन्दन ग्रन्थ' में उल्लेख आया है कि आचार्य पद पर श्री मोतीलालजी और युवाचार्य पद पर मुनि श्री माँगीलालजी को निर्विरोध मनोनीत किया गया। ये दोनो कथन एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं। अत: इन दोनों मान्यताओं के विवाद में जाकर यही कहा जा सकता है कि आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के पश्चात् संघ दो भागों में विभक्त हो गया। जिसमें एक की बागडोर आचार्य मोतीलाल जी ने सम्भाली तो दूसरे की मुनिश्री माँगीलाल जी ने। वर्तमान में दोनों परम्परायें श्रमण संघ में विलीन हो गयी हैं। वि०सं० २०२० ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में सहाड़ा में अचानक आपका (माँगीलालजी) स्वर्गवास हो गया।

आपके तीन प्रमुख शिष्य हुये पण्डितरत्न श्री हस्तीमलजी मेवाड़ी, श्री पुष्करमुनिजी और श्री कन्हैयालालजी। आप द्वारा किये गये चात्र्मासों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है–

वि० सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
१९७८	देलवाड़ा	१९९१	थामला
१९७९	रायपुर	१९९२	सरदारगढ़
१९८०	देवगढ़ (मदारिया)	१९९३	देलवाड़ा
१९८१	कुंवारिया	१९९४	खमणोर
१९८२	अकोला	१९९५	सादड़ी
१९८३	ऊंटाला(बल्लभनगर)	१९९६	गोगुन्दा
१९८४	सादड़ी	१९९७	सनवाड़
१९८५	रायपुर	१९९८	सहाड़ा
१९८६	मालवी	१९९९	नाई (उदयपुर)
१९८७	ऊंटाला	२०००	बाघपुरा (झालावाड)
१९८८	लावा (सरदारगढ)	२००१	नाईनगर
१९८९	देवगढ़ (मदारिया)	२००२	कुंवारिया
१९९०	पड़ासोली	२००३	मसूदा (अजमेर)

वि०सं०	स्थान	वि०सं०	स्थान
२००४	रेलमगरा	२०१२	मलाड (मुम्बई)
२००५	बाघपुरा	२०१३	बाघपुरा
२००६	रामपुरा	२०१४	बनेड़िया
२००७	उज्जैन	२०१५	राजकरेड़ा
२००८	लश्कर	२०१६	भीम
२००९	नाई	२०१७	कनकपुर
२०१०	रामपुर	२०१८	पलानाकलां
२०११	चिंचपोकली (मुम्बई)	२०१९	भादसौड़ा

मुनि श्री जोधराजजी

आपका जन्म वि०सं० १९४० में देवगढ़ के निकटस्थ ग्राम तगड़िया में हुआ आपके पिता का नाम श्री मोतीसिंहजी और माता का नाम श्रीमती चम्पाबाई था। बाल्यावस्था में ही आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। वि०सं० १९५६ में मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी को रायपुर में आप आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के हाथों दीक्षित हुये और मुनि श्री कस्तूरचन्द्रजी के शिष्य कहलाये। मुनि श्री हस्तीमलजी ने अपनी पुस्तक 'आगम के अनमोल रत्न' में लिखा है कि आपने सायंकाल में १४ वर्षों तक उष्ण आहार ग्रहण नहीं किया। इसके अतिरिक्त आपने एकान्तर, बेला, तेला, पाँच, आठ आदि तपस्यायें भी की । ४२ वर्ष संयमपालन कर वि०सं० १९९८ आश्विन शुक्ला पंचमी शुक्रवार को कुंवारियाँ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री मोतीलालजी

आपका जन्म वि०सं० १९४३ में ऊंटाला (बल्लभनगर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री घूलचन्द्रजी और माता का नाम श्रीमती जड़ावादेवी था। वि०सं० १९६० मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को १७ वर्ष की आयु में श्री एकलिङ्गदासजी के श्री चरणों में सनवाड़ में आपने आईती दीक्षा अंगीकार की। आचार्य श्री एकलिङ्गदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि०सं० १९९३ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को सरदारगढ़ में आप मेवाड़ चतुर्विध संघ द्वारा आचार्य पद पर विराजित किये गये। आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजकरेड़ा के राजा श्री अमरसिंहजी आपके उपदेशों से प्रभावित होकर पूरे चातुर्मास में अपने हाथों में कोई शस्त्र धारण नहीं किया। आपके जीवन से अनेक चमत्कारिक घटनायें जुड़ी हैं जिनका विवेचन विस्तारभय से नहीं किया जा रहा है। वि०सं० २००९ में सादड़ी में आयोजित बृहत्साधु सम्मेलन में आपने अपने आचार्य पद का त्याग कर दिया और नवगठित श्रमण संघ में सिम्मिलित हो गये। श्रमण संघ में आपने संघ के मन्त्री पद का निर्वहन बड़े ही सूझ-बूझ के साथ किया। आपने जीवन में २२ वर्ष तक मेवाड़ सम्प्रदाय

४० : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १३/जनवरी-मार्च २००३

के शासन को संचालित किया और ६ वर्षों तक श्रमण संघ के मन्त्री पद का निर्वहन किया। अन्तिम ५ वर्ष आपने देलवाड़ा में स्थिरवास के रूप में बिताया। वि०सं० २०१५ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को सायं ६.४५ बजे आपका स्वर्गवास हो गया।

पंजाब रावलिपण्डी (वर्तमान में पाकिस्तान में), महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हिरयाणा, गुजरात तथा दक्षिण प्रदेश आपका विहार क्षेत्र रहा। मुनि श्री अम्बालालजी और मुनि श्री भारमलजी आपके प्रमुख शिष्य थे।

मुनि श्री भारमलजी

आपका जन्म वि०सं० १९५० में मालवी के निकट सिन्दू कस्बे में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भैरुलालजी बड़ाला व माता का नाम श्रीमती हीराबाई था। २० वर्ष की अवस्था में वि०सं० १९७० में पूज्य आचार्य श्री मोतीलालजी के सान्निध्य में थामला ग्राम में आपने दीक्षा धारण की। ४८ वर्ष संयमधारणा का पालन करके वि०सं० २०१८ श्रावण अमावस्या को राजकरेड़ा में आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

प्रवर्तक श्री आम्बालालजी

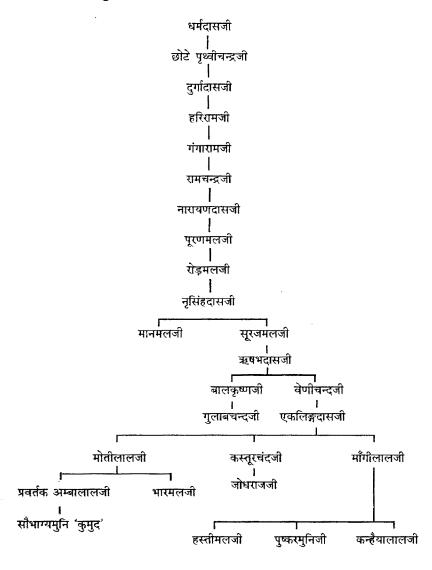
आपका जन्म वि०सं० १९६२ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया मंगलवार को मेवाड़ के थामला में हुआ। नाम हम्मीरमल रखा गया। छः वर्ष बाद जब आप अपने चाचा के यहाँ मावली आ गये तब आपका नया नामकरण हुआ— अम्बालाल। आपके पिता का नाम सेठ किशोरीलालजी सोनी व माता का नाम श्रीमती प्यारीबाई था। हथियाना में आचार्य श्री मोतीलालजी से आपका समागम हुआ। मुनि श्री भारमलजी आपके ममेरे भाई थे। वि०सं० १९८२ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी दिन सोमवार को भादसोड़ा से दस मील दूर मंगलवाड़ा में आचार्य श्री मोतीलालजी के हाथों आप दीक्षित हुए। मंगलवाड़ा में आपकी छोटी दीक्षा हुई। छोटी दीक्षा के सात दिन बाद भादसोड़ा में आपकी बड़ी दीक्षा हुई। दीक्षोपरान्त आपने थोकड़ो व शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। रचनात्मक कार्यों में आपकी विशेष रुचि थी। सनवाड़ में भगवान् महावीर के २५ वें निर्वाण शताब्दी के अवसर पर २५०० व्यक्तियों को आपने मांस-मदिरा का त्याग करवाया।

आप श्रमण संघ के प्रवर्तक पद के अतिरिक्त भी कई पदिवयों से विभूषित थे, जैसे— 'मेवाड़ मंत्री', 'मेवाड़ संघ शिरोमणि', 'मेवाड़ मुकुट' 'मेवाड़ के मूर्धन्य संत', 'मेवाड़रत्न', 'मेवाड़ गच्छमणि', 'मेवाड़ मार्तण्ड' आदि। आपका प्रथम चातुर्मास वि०सं० १९८३ में जयपुर व अन्तिम चातुर्मास वि०सं० २०५० में मालवी में हुआ। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, बम्बई, दिल्ली, उत्तरप्रदेश आदि आपका विहार क्षेत्र रहा है। वि०सं० २०५१ (१५.१.१९९४) में फतेहनगर (मेवाड़) में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्रमण संघीय मंत्री श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद'

आपका जन्म ई०सन् १० दिसम्बर १९३७ मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को आकोला (चित्तौड़गढ-राज०) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नाथूलालजी गांधी व माता का श्रीमती नाथाबाई था। वि०सं० २००६ माघ पूर्णिपा (तदनुसार २ फरवरी १९५०) को प्रवर्तक श्री अम्बालालजी के कर-कमलों में कडिया (चित्तौड़गढ-राज०) में आपने आहंती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपने आगम, व्याकरण, न्याय, दर्शन, ज्योतिष आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। १३ मई १९८७ के पूना सम्मेलन में आप श्रमण संघ के मंत्री पद पर मनोनित हुये। आप प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। अब तक आपने लगभग ३०-३५ ग्रन्थों का सफल लेखन/सम्पादन आदि किया है। आप स्थानकवासी समाज को एक मंच पर लाने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं।

छोटे पृथ्वीचन्द्रजी महाराज की मेवाड़ परम्परा



धर्म और धर्मान्धता

डॉ० बशिष्ठ नारायण सिन्हा*

धर्म और धर्मान्धता मानव-जीवन के प्रसिद्ध पक्ष हैं। धर्म कल्याणकारी होता है और धर्मान्धता अकल्याणकारी। अत: इन दोनों को अच्छी तरह समझने के बाद ही कोई व्यक्ति समुचित ढंग से अपना जीवन व्यतीत कर सकता है।

धर्म

अपने को सच्चे मानव के रूप में प्रस्तुत करना धर्म है। आदमी को आदमी समझना तथा उसके अनुकूल व्यवहार करना धर्म है। हृदय की विशालता धर्म है। इसलिए किसी व्यक्ति का धर्म उतना ही व्यापक होता है जितनी विशालता उसके हृदय की होती है। वह धर्म श्रेयष्कर होता है जिसमें सिर्फ मनुष्य ही नहीं बल्कि अन्य प्राणियों के साथ भी उचित व्यवहार होता है। भारतीय-परम्परा में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा गया है— ''धारयित इति धर्म:।''

अर्थात् जो धारण करता है वह धर्म है। धारण करने से मतलब है जो व्यक्ति के जीवन को धारण करता है, जो उसके समाज को धारण करता है वही उसका धर्म है। इसिलए देश और काल के अनुसार धर्म के बाह्य रूपों में परिवर्तन एवं भेद देखे जाते हैं। वास्तव में धर्म तो एक ही है— मानवधर्म। धर्म का बाह्यरूप जब बाह्याडम्बर के वशीभूत हो जाता है तो उससे सम्प्रदाय जन्म लेता है जिससे धर्म में विकृति आती है। सम्प्रदाय धर्म को वास्तविक रूप में नहीं बल्कि अपने अनुकूल प्रस्तुत करता है।

यद्यपि परिभाषा के अनुसार धर्म धारण करने वाला होता है, परन्तु धर्म स्वयं भी धारण किया जाता है। व्यक्ति उसी धर्म को धारित करता है जो देश और काल के अनुसार उसके अनुकूल होता है। वह उसी धर्म का पालन करता है जो उसके जीवन को सुखमय, शान्तिमय बनाता है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है—

स्वधर्में निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह।।३५।।

अर्थात् अपने धर्म के लिए अपना बिलदान देना श्रेय है, क्योंकि दूसरों के धर्म भयावह होते हैं। भयावह से तात्पर्य है— अनुकूलता का अभाव, जिसके कारण जीवन *. पूर्व उपाचार्य, दर्शन विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी. का धारण होना सम्भव नहीं है।

पाश्चात्य चिन्तक जॉन केवर्ड ने प्रतिपादित किया है— ''धर्म आत्मा का उस स्थान या क्षेत्र में विकास करता है जहाँ पर आशा निश्चित रूप धारण कर लेती है, संघर्ष विजय-शान्ति प्राप्त कर लेता है, चेष्टाएँ विश्राम पा जाती हैं। इस परिभाषा के अनुसार—

- ''(क) धर्म आत्मा का उत्थान है
- (ख) उस उत्थान में परिवर्तन होते हैं— आशा का निश्चितता में, संघर्ष का विजय में तथा प्रयासों का शान्ति या विश्राम में।"?

इस प्रकार धर्म मानव-जीवन को सामञ्जस्यता, शान्ति एवं आनन्द प्रदान करता है। जहाँ सामञ्जस्यता होती है वहीं पर शान्ति और आनन्द होते हैं। जहाँ शान्ति होती है वहीं सामञ्जस्यता होती है, आनन्द होता है। आनन्द के रहने पर शान्ति और सामञ्जस्यता होती है। ये तीनों एक-दूसरे के पूरक तथा एक दूसरे पर आधारित होते हैं।

धर्म की अनुभूति होती है जिसे धर्मानुभूति कहते हैं। धर्मानुभूति का सम्बन्ध हृदय से होता है। वह रहस्यात्मक होती है। व्यक्ति को इन्द्रियों से जो आनन्द होते हैं उन्हें धर्म नहीं कहा जा सकता है। वे तो सम्प्रदायगत धर्माडम्बर होते हैं। धर्मानुभूति के दो मार्ग हैं—

(१) सर्व-त्याग, (२) सर्व-ग्रहण।

इन दोनों में से किसी एक को अपनाकर ही कोई व्यक्ति धर्म की यथार्थता का बोध कर सकता है। ये दो मार्ग विराग पर आधारित हैं, सर्वत्याग को निषेधात्मक मार्ग कहते हैं। यह भक्ति पर आधारित होता है। एक मनुष्य अपना सब कुछ त्याग देता है, क्योंकि वह समझता है कि जो कुछ भी उसके पास है, वह उसका नहीं है। सब कुछ ईश्वरकृत है। ईश्वर ही सबका कर्ता, धर्ता तथा हर्ता है। तुलसीदासजी ने रामचिरतमानस में कहा है—

सबिह नचावत राम गुसांई। नाचत नर मरकट की नाई।।

अर्थात् मानव के जीवन में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में जो कुछ भी होता है या है वह ईश्वरकृत है या ईश्वर का है। किसी व्यक्ति का कुछ भी नहीं है।

सर्वग्रहण की पद्धित विधेयात्मक होती है। सर्वग्रहण भी विराग की स्थिति है। सामान्य तौर पर ग्रहण रागसूचक होता है, परन्तु विचित्रता यह है कि जब सर्वग्रहण की बात आती है तब उसका आधार विराग ही होता है। राग तो कुछ से होता है,

४५

सब से नहीं। यह विधेयात्मक पद्धित है। इसका माध्यम ज्ञान होता है। ज्ञानी का विवेचन करते हुए उपनिषदों में कहा गया है कि ज्ञानी वह होता है जो अपने को सब में तथा सबको अपने में देखता है। ज्ञानी को यह अनुभूति होती है कि जो वह है, वही सब हैं और जो सब है वही वह है। इस तरह वह सर्वग्रहण के आधार पर धर्मानुभूति प्राप्त करता है। बल्कि ऐसी अनुभूति ही धर्मानुभूति है। धर्मानुभूति के बिना धर्म का बोध असम्भव है। धर्मानुभूति रहस्यात्मक एवं अनिर्वचनीय होती है। इसे किसी अन्य व्यक्ति को दिया या समझाया नहीं जा सकता है। इसे वही समझता है जिसे इसकी अनुभूति होती है, जैसे गुड़ का स्वाद गूंगा ग्रहण तो करता है; किन्तु वह किसी को बता नहीं सकता है कि गुड़ कैसा होता है?

धर्मान्धता

सच्ची धार्मिक दृष्टि के अभाव को धर्मान्धता की संज्ञा दी जाती है। शङ्कराचार्य ने माना है कि माया के दो कार्य हैं— आवरण और विक्षेप। माया जब अपने प्रभाव से यथार्थ को छुपा देती है तो उसका वह कार्य आवरण कहलाता है। जब द्रष्टा के समक्ष वह अयथार्थ को प्रस्तुत कर देती है तब उसे विक्षेप कहते हैं। ठीक उसी प्रकार धर्मान्धता भी अपने आवरण और विक्षेप द्वारा लोगों को भ्रमित कर देती है। धर्मान्धता के कारण व्यक्ति धर्म के वास्तविक रूप को नहीं देख पाता है और जो अधर्म है उसी को धर्म समझ बैठता है। इन्हें धर्मान्धता का आवरण-विक्षेप कहना कोई गलत न होगा।

सामान्य अन्धापन के कारण व्यक्ति वस्तुओं को नहीं देख पाता है, उसी प्रकार धर्मान्थता के कारण कोई व्यक्ति धर्म को नहीं समझ पाता है; किन्तु सामान्य अन्धापन और धर्मान्थता में बहुत अन्तर है। सामान्य अन्धापन तो व्यक्ति तक ही सीमित होता है। किसी अन्धा व्यक्ति के साथ रहने वाला अन्धा नहीं हो जाता है; किन्तु धर्मान्थता तो संक्रामक रोग की तरह फैलती है। महाभारत की वह कथा बहुत प्रसिद्ध है जिसमें यह बताया गया है कि जब धृतराष्ट्र का विवाह हुआ तो उनकी पत्नी ने देखा कि उनके पित अन्धे हैं जिसके फलस्वरूप संसार की किसी वस्तु को नहीं देख सकते हैं यानी रूप का आनन्द वे नहीं ले सकते हैं अत: उनके लिए (पत्नी के लिए) यह उचित नहीं है कि वे सुन्दरता का आनन्द लें। ऐसा सोचकर उन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली। करीब-करीब ऐसी ही बात धर्मान्धता के साथ देखी जाती है। यदि किसी की पत्नी अपने जीवन के प्रारम्भ से ही धर्मान्ध है तो धीरे-धीरे वह व्यक्ति स्वयं भी धर्मान्ध हो जाता है। यदि पित धर्मान्ध है तो संगति के प्रभाव से उसकी पत्नी भी धर्मान्ध हो जाती है। यदि पित-पत्नी दोनों ने ही अपनी-अपनी आँखों पर धर्मान्धता की पट्टी बांध ली है तो अधिक सम्भावना रहती है उनकी सन्तानें भी धर्मान्ध हो जाएं। इस प्रकार धर्मान्धता संक्रामक रोग की तरह फैलती है। संक्रामक रोग तो उचित उपचार

होने पर समाप्त हो जाते हैं, किन्तु धर्मान्धता हटाना कठिन ही नहीं असम्भव-सा है।

प्राय: यह समझा जाता है कि विभिन्न सम्प्रदायों के असंख्य अनुयायीगण जो अपने गुरुजन या धर्म पथ-प्रदर्शकों की जय-जयकार मनाते हुए कभी थकते नहीं हैं, धर्मान्ध होते हैं उनके गुरुजन धर्मान्ध नहीं होते हैं; किन्तु बात ऐसी नहीं होती है। धर्मान्धता तो धर्म-गुरुओं या धर्म-पथ-प्रदर्शकों से ही प्रारम्भ होती है, जो धीरे-धीरे अनुयायियों तक फैल जाती है। आप मेरी बात से आश्चर्यित हो रहे होंगे, परन्त् ध्यानपूर्वक देखने पर आप स्पष्टतः समझ जाएंगे कि किस प्रकार धर्मान्धता कहाँ अंकुरित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होती है।

जब कोई व्यक्ति किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होता है तो वह उस सम्प्रदाय के नियमानुसार वस्त्रादि उपयोगी वस्तुओं को ध्यारण करता है जो उस सम्प्रदाय के प्रतीक होते हैं। वह उन्हीं प्रतीकों से पहचाना जाता है। सम्प्रदायों में साधुओं के लिए विभिन्न शब्दों के प्रयोग देखे जाते हैं, जैसे वैदिक-परम्परा में संन्यासी, जैन-परम्परा में श्रमण या मृनि तथा बौद्ध-परम्परा में साधु के लिए भिक्खु शब्द प्रचलित हैं। वैदिक तथा बौद्ध-परम्पराओं के साधू प्राय: गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं। जैन-परम्परा के मृनिजनों में जो दिगम्बर हैं वे कोई भी वस्त्र नहीं धारण करते हैं तथा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि श्वेत वस्न पहनते हैं और स्थानकवासी एवं तेरापंथी सम्प्रदाय के मुनिजन तो श्वेत वस्न के साथ-साथ मुख पर पट्टी भी बांधते हैं। दीक्षा लेने के बाद व्यक्ति संन्यासी या साध् का भेष धारण करता है और लोगों में साधु के रूप में प्रतिष्ठित होता है। जो लोग उससे उम्र में बड़े होते हैं वे भी उन्हें नमस्कार करते हैं, उनका चरणस्पर्श करते हैं। यहाँ तक कि माता-पिता भी उसे पुत्र न मानकर अपने से श्रेष्ठ मानते हैं और उसे नमस्कार करते हैं, उसकी वन्दना करते हैं। वह उच्च आसन पर विराजमान होता है और सामान्य लोग उसके सामने नीचे बैठते हैं। ये सभी बातें संन्यासी या श्रमण के मन में अहम्-भाव जागृत कर देती हैं। वह समझता है कि वह सच्चे अर्थ में साध् हो गया। उसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली। फलस्वरूप उसके बोलने की शैली उपदेशात्मक तथा आदेशात्मक हो जाती है। वह समझता है कि जो वह बोल रहा है वही धर्म है। वह स्वयं अपने को महाज्ञानी तथा सामान्य लोगों को महामूर्ख मान बैठता है; किन्तु वास्तव में यह उसकी धर्मान्धता होती है, अज्ञानता होती है, क्योंकि वासनाएं जल्द व्यक्ति को छोड़ती नहीं हैं और जब तक वह इन्द्रियों को वश में नहीं कर लेता है, कोई व्यक्ति अपने को साधु कहने का अधिकारी नहीं होता है। एक कहानी इस प्रकार हैं— एक व्यक्ति चोरी करता था, लेकिन किसी कारणवश उसने किसी सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। वह साधुओं के साथ रहने लगा; किन्तु चोरी करने की उसकी प्रवृत्ति समाप्त नहीं हो सकी। वह प्राय: दो-चार दिनों पर रात में अपने साथियों के तुम्बों या तुम्मों (जल पात्रों) को इधर-उधर छुपा देता था। सबेरा होने पर उसके साथी

परेशान हो जाते थे और वह उन लोगों को देख-देखकर मन ही मन प्रसन्न होता था। ऐसा क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा, परन्तु एक रात जब वह ऐसा कर रहा था तो किसी ने उसे देख लिया। सबेरा होने पर सभी साध इकट्ठा हुए और उससे पूछा कि तुम ऐसा क्यों करते हो। तुम क्यों सभी लोगों को कष्ट देते हो। उत्तर देते हुए चोर-साध ने साफ-साफ कहा-

चोरी से गए तो क्या तम्माफेरी से भी गए।

वह व्यक्ति दिल का साफ था, इसलिए उसने अपनी प्रवृत्ति को स्पष्टत: बता दिया, किसी प्रकार का कुतर्क नहीं किया। यह बात प्राय: सबके साथ होती है। मात्र वस्र धारण कर लेने से कुछ नहीं होता है। सच्चा साध् बनने में कई जन्म लग जाते हैं। तलसीदासजी ने कहा है—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

अर्थात कई जन्मों तक साधना करने के बाद भी मृनि अपने अन्तिम समय में 'राम' उच्चारण करने में असमर्थ रहता है। कारण, उसे साध्ता की प्राप्ति नहीं हो पाती है। हजारों में शायद एक-दो संन्यासी या मृनि ऐसे होते हैं जिन्हें सिद्धि प्राप्त होती है या जो मुक्त हो जाते हैं अन्यथा अनेकानेक तथाकथित साध सम्पूर्ण जीवन धर्मान्धता में ही व्यतीत कर देते हैं। वे स्वयं धर्मान्ध होते हैं और दूसरों को भी धर्मान्ध बनाते हैं, क्योंकि जिसे स्वयं धर्म का ज्ञान नहीं होता है वह दूसरों को धर्म-मार्ग पर कैसे निर्देशित कर सकता है। कहा गया है—

सिंहों के लेहरे नहीं. हंसों की नहीं पात। लालों की नहीं बोरियां, साधु न चले जमात।।

अर्थात् सिंह इतने अधिक नहीं होते कि वे झुण्डों में देखे जाएं हंसों की संख्या भी इतनी नहीं होती है कि उनकी पंक्तियां देखी जाएं मूल्यवान् द्रव्य लालों की संख्या बहुत कम होती है। इसलिए उन्हें बोरियों में कसने की बात नहीं पायी जाती है। इसी तरह साध भी कोई बड़ी मुश्किल से मिल पाता है। अत: साधुओं की जमात नहीं होती है।

किन्त् धर्मान्ध साध्-मात्र इसमें विश्वास करता है कि वह किसी न किसी बहाने अधिक से अधिक लोगों की भीड़ एकत्रित करे और लोग उसकी जयकार करें। जो साध् जितनी अधिक भीड़ इकट्टी कर पाता है वह उतना ही बड़ा माना जाता है। तथाकथित साधु चाहता है कि उसके द्वारा आयोजित सभा में सामान्य लोग ही नहीं बल्कि राजनेता, बड़े विद्वान, सरकारी उच्चाधिकारी आदि आवें ताकि वह अपने अनुयायियों को यह बता सके कि वह कितना महान है।

खिलौनों के बाजार में देखा जाता है कि दुकानों पर तरह-तरह के खिलौने सजाएँ हुए रहते हैं- उछलने वाला बन्दर, गाने वाली चिड़ियाँ, दहाड़ने वाला सिंह, छुक-छुक चलने वाली रेलगाड़ी, सूं सूं करके उड़ान भरने वाला जहाज आदि। बच्चे उन्हें देखते हैं और जिसे जो खिलौना पसन्द आता है वह उसे खरीद लेता है। ठीक उसी तरह दुनिया के बाजार में कई तरह के आकर्षक खिलौने देखे जाते हैं, जैसे- मानव धर्म, मानव मिलाप, मानव एकता, विश्वधर्म, विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति यज्ञ, सर्वधर्मसमभाव, सर्वधर्मसमन्वय इत्यादि। इन खिलौनों से राजनेता, धर्मनेता, समाजनेता खेलते हैं और सामान्य जनता इन लोगों के पीछे-पीछे हाथ उठाए हुए जय-जयकार करती है। इन खिलौनों से खेल दिखाकर कुछ लोग धन, कुछ लोग यश तथा कुछ अन्य लोग मत अर्जित करते हैं।

धर्मान्धता के कारण साधु जहाँ से प्रस्थान करता है वहीं पर लौट कर आ जाता है। इस सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है। एक व्यक्ति अपनी पारिवारिक कठिनाइयों से तंग आकर अपना घर-बार छोड़ दिया और एक सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया। उसने साधु के वस्न धारण कर लिए और भिक्षाटन करने लगा और भिक्षावृत्ति से ही अपना जीवनयापन करने लगा। इस तरह आठ-दस वर्ष बीत गये, लोग उसे धीरे-धीरे भूल ाये; किन्तु संयोगवश वह यहाँ-वहाँ भ्रमण करता हुआ अपने ही गांव में आ गया तथा गांव से बाहर एक वटवृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। बच्चों ने देखा और गांव में यह बात सुचित हो गयी कि एक संन्यासी आया है जिसकी जटाएं इस प्रकार हैं और दाढ़ी ऐसी है आदि-आदि। लोग साधु को देखने के लिए एकत्रित हो गये। दस वर्ष से कम आयु वाले बच्चे तो उसे नहीं पहचान सके लेकिन सयाने और बूढ़े लोगों ने उसे पहचान लिया और उसने भी सबको पहचाना। यह बात साधु के परिवार तक पहुँच गयी कि अमुक व्यक्ति जो घर छोड़कर चला गया था वही साधु के रूप में आया हुआ है। उसकी पत्नी के मन में बड़ी उत्सुकता हुई कि वह अपने खोए हुए पति को देखे, परन्तु जहाँ पूरा गाँव एकत्रित था वहाँ वह किस प्रकार पति से मिलने की धृष्टता करती। अत: रात में जब प्राय: सभी लोग सो गये वह चुपके से उस वटवृक्ष के नीचे पहुँच गयी जहाँ उसका साधु पति सोया था। जब वह पहुँची, किसी के आने की आहट पाकर साधु जग गया और उठकर बैठ गया। दोनों ने एक दूसरे को देखा और देर तक देखते रहे, फिर वार्ता शुरु हुई, हाल-चाल की जानकारी हुई, पत्नी को उत्सुकता हुई कि वह अपने पति की सामग्रियों को देखे कि साधु जीवन में किन-किन चीजों की जरूरत होती है? उसने अपने पित से आज्ञा ली और उसके झोले के सामानों को एक-एक करके देखा। साधु के झोले में एक छोटा चूल्हा, छोटा चौका-बेलना, छोटा भगौना, छोटा चिमटा, एक दीपक, कुछ अन्न, कुछ वस्न आदि वे सभी चीजें थीं जो कुछ बड़े पैमाने पर एक परिवार में होती हैं। पत्नी सामानों को देखती रही

धर्म और धर्मान्धता : ४९

और अन्त में अपने पित से उसने आग्रह किया-

"महाराज! आप संन्यासी हैं, किन्तु आपके झोले में तो वे सभी चीजें हैं जो मेरे घर में हैं। इसमें कमी है तो सिर्फ मेरी। अत: आप क्यों नहीं मुझे भी इस झोले में डाल लेते हैं।"

धर्मान्ध साधु लौटकर अपने गांव में भले ही न पहुँचता हो, किन्तु जिन सांसारिक प्रपञ्चों का त्याग करके वह संन्यासी बनता है, वे पुन: उसके साथ हो जाते हैं और उसका जीवन प्राय: उसी तरह का हो जाता है जिस तरह गृहस्थ का जीवन होता है। बड़े-बड़े महन्तों एवं संघाधिपतियों की जीवनचर्या और व्यवस्था को देखेंगे तो आप पायेंगे कि उनके साथ सुख-सुविधा के वे सभी साधन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हैं जो एक गृहस्थ के पास होते हैं। बल्कि सामान्य परिवार में उतनी सुविधाएं होती भी नहीं है जितनी साधुओं के पास होती हैं। हाँ! साधु और गृहस्थ में थोड़ा अन्तर यह होता है कि गृहस्थ सांसारिक सुख को खुलकर स्वतन्त्रतापूर्वक भोगता है जबिक साधु जीवन के प्रतिबन्धों को देखते हुए, लोक-लज्जा से डरते हुए लुकछुपकर सांसारिक सुख का आनन्द लेता है, जो उसके लिए ही नहीं बल्कि उसके अनुयायियों के लिए भी घातक होता है।

धर्मान्ध धर्मनेता तथा राजनेता एक जैसे ही होते हैं। दोनों सुविधाभोगी तथा समाज के शोषक होते हैं। राजनेता समाज के विकास के लिए लम्बे-लम्बे भाषण देता है लेकिन सही अर्थ में वह समाज को अविकसित अवस्था में ही रखना चाहता है ताकि लोग उसके लिए हाथ उठा सकें और नेता के रूप में उसे सम्मानित करते रहें। उसी प्रकार धर्मान्ध धर्मनेता भी नहीं चाहता है कि धर्म का विकास हो और लोग धर्म की वास्तविकता को जानें। वह तो अपने अनुयायियों को यह बताता है कि जो कुछ वह कह रहा है वही शास्त्र है, धार्मिक सिद्धान्त है और उसके वचन के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह अधर्म है।

धंर्मपथ-प्रदर्शक की धर्मान्धता के कारण सम्पूर्ण सम्प्रदाय धर्मान्ध होता है; किन्तु पुरुषों की तुलना में महिलाएं ज्यादा धर्मान्ध होती हैं। धर्मान्धता के कारण कभी-कभी वे अपने परिवार वालों की अवहेलना कर देती हैं। कुछ महिलाओं को देखा जाता है कि अपने पित तथा परिवार के लोगों को भोजन कराते समय उनके चेहरे पर मलीनता होती है, व्यवहार में रूखापन होता है; किन्तु जब कोई परिचित साधु या संन्यासी उनके दरवाजे पर आ जाता है तो उसे वे साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि के रूपों में देखती हैं। उसे वे प्रसन्नतापूर्वक अपनी पाकशाला तक ले जाती हैं और अति विनम्रता के साथ साधु के पात्रों में भोज्य सामग्रियाँ रखती हैं। वे कभी हँसती हैं, कभी मुस्कुराती हैं और बार-बार विभिन्न सामग्रियों में से कुछ

और लेने के लिए आग्रह करती हैं उन्हें लगता है कि मात्र साधु भेषधारी व्यक्ति को भोजन करा देने से ही उन्हें संसार की सभी उपलब्धियाँ मिल जायेंगी या वे भवसागर को पार कर जायेंगी। घर वालों के प्रति उनका कोई कर्त्तव्य नहीं है, परन्तु उन्हें भूलना नहीं चाहिए कि घर में चिराग जलाने के बाद ही मन्दिर में चिराग जलाना श्रेयष्कर होता है। घर में यदि अधेरा है तो मन्दिर में उजाला करना कोई अर्थ नहीं रखता। परिवार की तो बात ही क्या ईसा मसीह ने पड़ोसी के प्रति सद्भाव एवं स्नेह जताने की बात कही है। उन्होंने कहा है कि "यदि तुम ईश्वरोपासना हेतु चर्च में जाने के लिए तैयार हो और तुम्हें जानकारी होती है कि तुम्हारा पड़ोसी तुमसे किसी कारण नाराज है, असन्तुष्ट है तो चर्च जाने के बदले तुम उस पड़ोसी के पास जाओ, उसे प्रसन्न करो, फिर चर्च में जाओ।"

धर्मान्ध महिलाओं को महात्मा ईसा मसीह के उक्त कथन को अच्छी तरह समझना चाहिए।

कार्ल मार्क्स की प्रसिद्ध उक्ति है— "धर्म एक नशा है" क्योंकि जिस प्रकार नशा सेवन से व्यक्ति भ्रमित हो जाता है, उसकी संज्ञानता विलुप्त हो जाती है,उसी प्रकार धर्म के प्रभाव से कोई व्यक्ति भ्रमित हो जाता है तथा उसे अपने जीवन की वास्तविकता का बोध नहीं हो पाता है। मार्क्स के इस कथन में सुधार की आवश्यकता है। वास्तव में धर्म किसी को भ्रमित नहीं करता है। धर्म तो जीवन के मूल्यों का बोध कराता है। धर्मान्धता से अवश्य ही व्यक्ति भ्रमित हो जाता है, क्योंकि उसकी आँखें खुली होकर भी खुली नहीं होती हैं। उसके दिल, दिमाग अपने होते हुए भी अपने नहीं रह जाते हैं। वह वही देखता है, वही सुनता है, वही कहता है, वही करता है जो उसके धर्मान्ध धर्म-पथ-प्रदर्शक उसे दिखाते हैं, सुनाते हैं तथा उससे कहलवाते हैं, करवाते हैं।

सन्दर्भ :

- १. **श्रीमद्भगवद्गीता**, अध्याय ३.
- Religion is the elevation of the spirit into region where hope passes into conquest, intemiable effort and endeavour into peace and rest. Philosophy of Religion, p. 284. बी०एन० सिन्हा, धर्म दर्शन, पृ० ११.

धूलिया से प्राप्त शीतलनाथ की विशिष्ट प्रतिमा

प्रो० सागरमल जैन*

महाराष्ट्र प्रान्त के धूलिया नामक नगर के निकट स्थित एक ग्राम से श्याम पाषाण की एक जिनप्रतिमा विगत कुछ वर्ष पूर्व उपल्ब्ध हुई थी जो आज धूलिया के श्वेताम्बर जैन मंदिर में प्रतिष्ठापित है। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार जिस स्थान से उक्त प्रतिमा उपलब्ध हुई है, वहां एक भग्न जिनालय के अवशेष भी मिलते हैं। उक्त प्रतिमा पर लेख भी उत्कीर्ण है, जिसकी वाचना निम्नानुसार है:

सं० १२१६ फाल्गुन वदि १० गुरौ श्री चन्द्रगच्छीय कन्धारान्वयग्रे रासलेनसुत आमदेवग्ने यसे प्रतिमा कारिता।

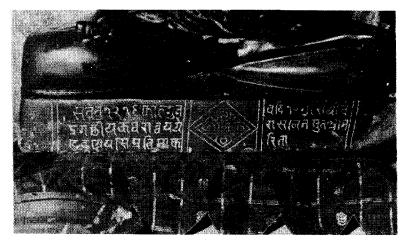
उक्त प्रतिमा लेख को विक्रम सम्वत् ही मानना चाहिए क्योंकि अब तक प्राय: जो भी जैन प्रतिमालेख प्राप्त हुए हैं उन पर विक्रम सम्वत् ऐसा न लिख कर केवल सम्वत् ही लिखा होता है। दूसरे जहां शक सम्वत् उत्कीर्ण करना होता था, वहां स्पष्ट रूप से शक सम्वत् लिखते थे। इस आधार पर उक्त प्रतिमालेख में उल्लिखित सम्वत् की विक्रमसम्वत् मानने में कोई आपितत नहीं दिखाई देती। उक्त लेख में चन्द्रगच्छ के कन्थारान्वय का उल्लेख होने से ऐसा लगता है कि यह चन्द्रगच्छ की कोई शाखा रही होगी। चन्द्रगच्छ का प्रादुर्भाव चन्द्रकुल से हुआ है। परम्परागत मान्यतानुसार आर्य वज्रसेन के चार शिष्यों - नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर - से चार कुल अस्तित्व में आये। प्रभावकचरित तथा परवर्ती काल में रची गयी विभिन्न पट्टावलियों से भी इस बात की पृष्टि होती है किन्त् कल्पसूत्र की 'स्थविरावली' में 'चन्द्र' और 'निवृत्ति' कुल का उल्लेख न होने से यह स्पष्ट है कि किञ्चित परवर्ती काल में ये कुल अस्तित्व में आये। आकोटा से प्राप्त धात् प्रतिमाओं में 'चन्द्र' और 'निवृत्ति' कुल का स्पष्ट उल्लेख होने से यह स्पष्ट है कि ई॰ सन की छठीं शती तक ये कुल अस्तित्व में आ चुके थे। आगे चलकर चन्द्रकुल से ही बृहद्गच्छ, पूर्णिमागच्छ, पिप्पलगच्छ, खरतरगच्छ, अंचलगच्छ, तपागच्छ आदि अस्तित्त्व में आये। इनमें से खरतर, अंचल (अचल) और तपा - ये तीन गच्छ आज भी विद्यमान हैं।

^{*}सचिव, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

गण-कुल और शाखा के स्थान पर परवर्तीकाल में जब 'गच्छ' शब्द का प्रचलन हुआ तो चन्द्रकुल भी चन्द्रगच्छ के नाम से जाना जाने लगा। चन्द्रगच्छ के मुनिजनों द्वारा रची गयी विभिन्न रचनायें उपलब्ध होती हैं जो १२वीं शती तथा उसके बाद की विभिन्न शताब्दियों में रची गयी हैं। उपलब्ध अभिलेखीय और ग्रन्थप्रशस्तिगत साक्ष्यों के आधार पर यह सुनिश्चित है कि १२वीं-१४वीं शताब्दी में चन्द्रगच्छ श्वेताम्बर परम्परा का एक प्रभावशाली गच्छ रहा है। इस गच्छ का प्रभावक्षेत्र कहां से कहां तक रहा, यह ठीक-ठीक निश्चित कर पाना कठिन है, किन्तु चन्द्रगच्छ के जो अभिलेख हमें प्राप्त हुए हैं वे पश्चिमी राजस्थान और गुजरात प्रान्त के हैं। अभी तक इस गच्छ का कोई भी लेख हमें महाराष्ट्र से मिला हो, ऐसी सूचना हमारे पास उपलब्ध नहीं है। चन्द्रगच्छ का उल्लेख करने वाला महाराष्ट्र प्रान्त से प्राप्त यह प्रथम अभिलेख है। चूंकि उक्त लेख में इस गच्छ के किसी आचार्य का नाम नहीं है अत: ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में चन्द्रगच्छ के श्रावक ही रहते थे। इस गच्छ के मुनि एवं आचार्यों का यहां विचरण नगण्य ही रहा होगा, अन्यथा किसी आचार्य द्वारा उक्त प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई होती और वहां उनका नाम भी उत्कीर्ण होता। यह उल्लेखनीय है कि धुलिया के जिस निकटवर्ती ग्राम से उक्त प्रतिमा मिली है वह दक्षिणी गुजरात से २०० कि०मी० से अधिक दूर नहीं है।

प्रस्तुत अभिलेख में चन्द्रगच्छ के साथ-साथ कन्धारान्वय का भी उल्लेख है। विभिन्न साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि पूर्वमध्य युग एवं मध्ययुग में चन्द्रगच्छ श्वेताम्बर परम्परा का एक सुविख्यात गच्छ रहा है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा में कन्धारान्वय का उल्लेख हमारी जानकारी में यह प्रथम ही है। यह अन्वय कब अस्तित्त्व में आया, इसके आदिम आचार्य कौन थे, यह बता पाना कठिन है। केवल एक ही बात स्पष्ट होती है कि इस 'अन्वय' की उत्पत्ति कन्धार से हुई है। कन्धार नामक स्थान तो नहीं अपितु गंधार नामक स्थान अवश्य है जो गुजरात राज्य में खंभात के निकट स्थित है। यह वही स्थान है जहां से अकबरप्रतिबोधक आचार्य हीरविजयसूरि ने बादशाह के निमंत्रण पर आगरा के लिये प्रस्थान किया था। १२वीं से १६वीं शती तक यह स्थान जैनों का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। यहां के ओसवालों का एक बड़ा वर्ग

व्यवसाय के निमित्त मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में बस गया है, आज भी स्वयं को कंधारी ओसवाल कहता है। यह भी ज्ञातव्य है कि इस कंधार से धूलिया के निकट स्थित वह स्थान, जहां से प्रतिमा प्राप्त हुई है, लगभग २५० कि०मी० से ज्यादा दूर नहीं है अत: उक्त प्रतिमालेख में उल्लिखित कंधारान्वय दक्षिण गुजरात में स्थित गंधार से सम्बन्धित है और इस सम्बन्ध में कोई शंका नहीं रह जाती है। यद्यपि अभी तक कोई साहित्यिक या अन्य किसी अभिलेखीय साक्ष्यों में कंधारान्वय का उल्लेख न मिलने से यह बतला पाना कठिन है कि यह श्रावकों का ही एक संगठन था या इसमें कोई मुनि या आचार्य आदि भी हुए हैं, इस सम्बन्ध में अभी भी गहराई से खोज एवं चिन्तन की आवश्यकता है। यद्यपि जब तक कोई अन्य ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है यही मानना होगा कि यह 'कन्धारान्वय' वस्तुत: श्रावकों के एक वर्ग का ही सूचक था जो मूलत: गन्धार (दक्षिण गुजरात) के निवासी थे।



शीतलनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख का मूल पाठ

अभिलेख की भाषा - यद्यपि उक्त प्रतिमालेख की भाषा संस्कृत है किन्तु उसमें 'यसे' शब्द की उपस्थिति से यह सूचित होता है यह लेख महाराष्ट्र में ही लिखा गया है। जहां तक मेरा अनुमान है 'यसे' वर्तमान मराठी भाषा के 'यांस' का ही कोई प्राचीन रूप होगा और इसका 'यसे' का अर्थ 'यह' या 'इस' होगा।



धूलिया से प्राप्त शीतलनाथ की श्याम पाषाण से निर्मित प्रतिमा

प्रतिमा - जैसा कि चित्र से स्पष्ट है प्रस्तुत प्रतिमा अत्यन्त सुडौल और सुन्दर है। यह 'समचतुझ संस्थान' में निर्मित है। प्रतिमा के कन्धे और कोहनी का मोड़ लगभग समकोण है। प्रतिमा पर श्रीवत्स का अंकन होने से यह शीतलनाथ की प्रतिमा के रूप में जानी जा सकती है।

प्रतिमा की दूसरी विशेषता यह है कि दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिमा की गोद में शिवलिंग है। ज्ञातव्य है कि मध्य काल में दक्षिण भारत में शैवों ने यह अनिवार्य कर दिया था कि जो शिवलिंग धारण करेगा, वही सुरक्षित रहेगा। इस कारण जिनप्रतिमाओं की आकृति इस प्रकार से बनायी जाने लगी कि उनकी गोद में शिवलिंग प्रतीत हो। इस प्रकार की प्रतिमायें प्राय: दक्षिण भारत में ही पायी जाती हैं।

'कन्थारान्वय' का उल्लेख करने वाली यही एकमात्र ज्ञात प्रतिमा है साथ ही प्रतिमा की गोद में शिवलिंग का आभास देने वाली विरल प्रतिमाओं में से एक है। इन दोनों विशेषताओं के कारण हम इसे एक विशिष्ट प्रतिमा कह सकते हैं।

खरतरगच्छ-जिनभद्रसूरिशाखा का इतिहास

शिवप्रसाद*

खरतरगच्छ में समय-समय पर विभिन्न शाखाओं के साथ-साथ कुछ उपशाखायें भी अस्तित्त्व में आयीं। इनमें क्षेमकीर्तिशाखा, कीर्तिरत्नसूरिशाखा, सागरचन्द्रसूरिशाखा और जिनभद्रसूरिशाखा प्रमुख हैं। ये प्रशाखायें मूल खरतरगच्छीय परम्परा की ही अनुयायी रहीं। साम्प्रत निवन्ध में जिनभद्र-सूरिशाखा के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

खरतरगच्छीय आचार्य जिनराजसूरि के पट्टधर जिनभद्रसूरि (वि०सं० १४७५-१५१४) अपने समय के एक प्रभावक जैनाचार्य थे। अनेक प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थों की बड़ी संख्या में प्रतिलिपि कराने, देश के विभिन्न नगरों में ग्रन्थभंडारों की स्थापना कराने तथा सैकड़ों की संख्या में जिन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराने में किसी भी गच्छ में ऐसा कोई भी मुनि या आचार्य नहीं हुआ जिसे इनके समकक्ष रखा जा सके। इनके पट्टधर जिनचन्द्रसूरि 'पंचम' हुए, जिनसे खरतरगच्छ की मूल परम्परा आगे चली तथा अन्य शिष्यों-प्रशिष्यों ने अपनी स्वतंत्र पहचान अथवा विशाल गच्छ परिवार में संगठन को दृढ़ बनाये रखने हेतु उस समय प्रायः प्रचलित परम्परा के अनुसार स्वयं को एक प्रशाखा के रूप में संगठित कर लिया। जिनभद्रसूरि के नाम पर यह प्रशाखा जिनभद्रसूरिशाखा के नाम से जानी गयी। जहां देश के अन्यान्य नगरों में जिनभद्रसूरि द्वारा स्थापित ज्ञानभंडार आज लुत्त हो चुके हैं वहीं जैसलमेर दुर्ग स्थित विश्वविख्यात ग्रन्थभंडार आज भी इनकी कीर्ति को अमर बनाये हुए है।

खरतरगच्छ की इस प्रशाखा में जयसागर उपाध्याय, मेरुसुन्दर उपाध्याय, कमलसंयमगणि, मुनि समयप्रभ, मुनि मेरुधर्म, कनकप्रभ, रंगकुशल, साधुकीर्ति, धर्मसिंह, नयरंग, विनयविमल, राजसिंह आदि कई विद्वान् मुनिजन हो चुके हैं। उक्त रचनाकारों ने अपनी कृतियों की प्रशस्तियों में अपनी गुरु-परम्परा के मुनिजनों की छोटी-छोटी गुर्वावली दी है। जिनभद्रसृिर को छोड़कर इस शाखा से सम्बद्ध मुनिजनों द्वारा प्रतिष्टापित न तो कोई प्रतिमा मिलती है और न ही इससे सम्बद्ध कोई पट्टावली ही मिलती है। अतः इस निबन्ध में मात्र प्रशस्तिगत साक्ष्यों के आधार पर ही इस प्रशाखा के इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत है-

[ै] प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीट, वाराणसी

५६ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

खरतरगच्छ की इस शाखा के आदिपुरुष जिनभद्रसूरि का साहित्य संरक्षक, संवर्धक एवं पुनरुद्धारक आचार्यों में प्रथम स्थान है। इनके साहित्योद्धार के परिणामस्वरूप जालौर, जैसलमेर, देविगिरि, नागौर, अणहिलपुर-पत्तन आदि नगरों में विशाल ग्रन्थभंडार स्थापित किये जा सके। इसके अतिरिक्त इनकी प्रेरणा से खंभात, कर्णावती, माण्डवगढ आदि स्थानों पर भी ग्रन्थभंडारों की स्थापना हुई। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इनके द्वारा स्थापित जैसलमेर का विश्वविख्यात् ग्रन्थभंडार आज भी विद्यमान है और इन्हीं के नाम से जाना जाता है।

आचार्य जिनभद्रसूरि आजीवन ग्रन्थभंडारों की स्थापना और इनके निमित्त प्रतियों के संशोधन-परिमार्जन में लगे रहे, इसी कारण इनके वैदुष्य के अनुकूल इनकी कोई कृति नहीं मिलती, फिर भी इनके द्वारा रचित कुमार-संभवटीका, जिनसत्तरीप्रकरण आदि कुछ रचनायें मिलती हैं। इनके द्वारा स्थापित बड़ी संख्या में जिनप्रतिमायें प्राप्त होती हैं जो वि० सं० १४७६ से वि० सं० १४१४ तक की हैं।

उपाध्याय जयसागर, जिनका उपर उल्लेख आ चुका है, जिनराजसूरि से दीक्षा ग्रहण की। जिनराजसूरि के शिष्य एवं पट्धर आचार्य जिनवर्धनसूरि आपके विद्यागुरु थे। दैवी प्रकोप के कारण जब विवसंव १४७५ में जिनवर्धनसूरि के स्थान पर जिनभद्रसूरि को गच्छ नायक बनाया गया तो गच्छ में भेद हो गया और जिनवर्धनसूरि एवं उनके अनुयायी मूल परम्परा से पृथक हो गये और उनसे खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा अस्तित्व में आयी। जिनभद्रसूरि ने जयसागर जी को अपने पक्ष में करने के लिए उपाध्याय पद से अलंकृत किया। विवसंव १५५५ आषाढ़ विद १ के आवू स्थित खरतरवसही के लेखों से ज्ञात होता है कि जयसागर जी ओसवाल वंश के वरडागोत्रीय थे। इनके पिता का नाम आसराज व माता का नाम सोखू था। इनके संसार पक्षीय भ्राता मांडलिक ने आबू स्थित खरतरवसही का निर्माण कराया और विवसंव १५५ आषाढ़ विद १ को आचार्य जिनचन्द्रसूरि के हाथों प्रतिष्ठा करायी।

जयसागर उपाध्याय अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे। इनके द्वारा रची गयी विभिन्न रचनायें मिलती हैं जो इस प्रकार हैं-

मौलिक ग्रन्थ

१. पर्वरत्नावली वि०सं० १४७८
२. विज्ञप्तित्रिवेणी वि०सं० १४८४
३. पृथ्वीचन्द्रचरित्र वि०सं० १५०५

टीका ग्रन्थ

- ४. संदेहदोहावली लघुवृत्ति वि०सं० १४६५
- ५. गुरुपात्रंत्र्यलघुवृत्ति
- ६. उपसर्गहरस्त्रोत्रवृत्ति
- ७. भावारिवारणस्त्रोत्रवृत्ति
- ८. रघुवंशसर्गाधिकार
- ६. नेमिजिनस्तुतिटीका

इनके अतिरिक्त इनके द्वारा बड़ी मात्रा में रचे गये छोटे-छोटे छन्द. स्तृतियां, रास, वीनती, विज्ञप्ति, स्तव, स्त्रोत्र आदि प्राप्त होते हैं। इस सम्बन्ध में विस्तार के लिए द्रष्टव्य-पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित और जैन आत्मानन्दसभा, भावनगर द्वारा १६१६ ई० में प्रकाशित विज्ञानि त्रिवेणी तथा महोपाध्याय विनयसागर जी द्वारा सम्पादित एवं सुमित सदन, कोटा द्वारा १६५३ ई० में प्रकाशित अरजिनस्तव की भूमिकायें।

जिनभद्रसूरि के एक शिष्य समयप्रभ उपाध्याय ने वि० सं० १४७५ के पश्चात् कभी *जिनभद्रसूरिपट्टाभिषेकरास* की रचना की। उत्तराध्ययनसूत्र की सर्वार्थ- सिद्धिवृत्ति के रचियता, कल्पसूत्र की विभिन्नस्वर्णाक्षरी प्रतियों के प्रलेखक के रूप में विख्यात कमलसंयम उपाध्याय भी इन्हीं के आज्ञानुवर्ति थे ।

शीलोपदेशमालाबालावबोध (रचनाकाल वि० सं० १५२५), योगप्रकाशबालावबोध (वि०सं० १६वीं शती); योगशास्त्रबालावबोध (वि०सं० १६वीं शती) आदि विभिन्न कृतियों के रचनाकार मेरुसुन्दरगणि ने अपनी कृतियों की प्रशस्तियों में अपने गुरु के रूप में रत्नमूर्ति और प्रगुरु के रूप में आचार्य जिनभद्रसूरि का उल्लेख किया है-

जिनभद्रसूरि→रत्नमूर्ति→मेरुसुन्दरगणि (*योगशास्त्रबालावबोध* आदि विभिन्न कृतियों के रचनाकार)

इसी शाखा में हुए देवकीर्ति के शिष्य देवरत्न द्वारा रचित शीलवतीचौपाई नामक एक कृति प्राप्त होती है। मुनि पुण्यविजय के हस्त-लिखित ग्रन्थों के संग्रह के गुजराती विभाग में इस कृति की वि०सं० १७२६/ई०स० १६७० में लिखीं गयी एक प्रति संरक्षित है, जिसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह कृति वि०सं० १५६६ में रची गयी थी।

इसके विपरीत श्री मोहनचंद देसाई को प्राप्त इस कृति की एक प्रति की प्रशस्ति में इसका रचनाकाल वि०सं० १६६८/ई० स० १६४२ में देते हुए रचनाकार की गुरु-परम्परा भी दी गयी है", जो इस प्रकार है:

संवत सोल अठाणु काती समे रे, वालसीस (सर) नयर मझारी.

सीलवतीनी कीधी चोपई रे, सील तणे अधिकारी श्री खरतरगच्छनायक सोहता रे, प्रतपो कोडी वरिस। शाखा श्री जिनभद्रसूरिनी रे, जाणे सहू संसार वाचक श्री दयाकमल गणिवरु रे, गुणमणिरयणभंडार। तासु सीस सिवनंदनगणि रे, वाचक देवकीरित गणिंद महियलमां जीवो चिर लगे रे, जां लगे छे रिवचंद। तासु सीस लवलेसे उपदिशे रे, देवरतन कहे अम, खंड त्रीजो ने ढाल धन्यासीरी रे, चढी परिणामे तेम। सतीय चरित्र सांभलतां भणतां छतां रे हुई आणंद रंगरोल, देवरतन कहइ तेहने संपजइ रे, लिषमी तणा कल्लोल।

जिनभद्रसूरि→दयाकमलगणि→शिवनंदनगणि→देवकीर्तिगणि→ देवरत्न (वि०सं० १६६८ में शीलवतीचौपाई के रचनाकार)

्रश्री देसाई के उक्त प्रमाण को श्री अगरचंद नाहटा" तथा अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार कर लिया है।

उपरोक्त दोनों साक्ष्यों में हम देखते हैं कि एक ही कृति के रचनाकाल की दो अलग-अलग तिथियां प्राप्त होती हैं और इन दोनों तिथियों में १२६ वर्षों का अतिदीर्घ अन्तराल है। चूंकि इस शाखा के आदिपुरुष जिनभद्रगणि का काल वि० सं० १४७५-१५१४ सुनिश्चित है अतः उनसे तीन पीढी पश्चात् चौथी पीढी में हुए देवरत्न का काल वि०सं० १५६६ अर्थात् सोलहवीं शती के तृतीय चरण के आसपास ही अधिक संभव है न कि वि० सं० १६६८ अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम दशक का अंतिम छोर, जैसा कि श्री देसाई को प्राप्त शीलवतीचौपाई की प्रति में उल्लिखित है। अतः इस आधार पर इस कृति का जो रचनाकाल मुनि पुण्यविजय जी की प्रति में प्राप्त होता है उसे प्रमाणिक मानने में कोई बाधा दिखाई नहीं देती।

वि०सं० १६०४/ई०स०१५४८ में सुख-दुःख विपाक संधि के रचना-कार धर्ममेरु भी खरतरगच्छ की इसी शाखा से सम्बद्ध थे। अपनी उक्त कृति की प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है-

जिनभद्रसूरि →िसद्धान्तरुचि महोपाध्याय → साधुसोम → कमललाभ →चरणलाभ →धर्ममेरु(वि०सं०१६०४/ई०स०१५४६में सुख-दुःख विपाकसंधि के रचनाकाल)

श्री अगरचन्द नाहटा ने धर्ममेरु द्वारा रचित एकविंशतिस्थानक प्रकरण नामक कृति का भी उल्लेख किया है", परन्तु उन्होंने इसका रचनाकाल वि०सं०१६७६ से पूर्व बतलाया है। चूंकि मुनि धर्ममेरु की ऊपर कथित एक रचना सुख-दुःख विपाकसंधि का रचनाकाल वि०सं० १६०४ सुनिश्चित है, अतः दूसरी कृति एकविंशतिस्थानकप्रकरण का रचनाकाल भी विक्रम सम्वत् की सत्रहवीं शती के प्रथम या द्वितीय दशक के आसपास ही होना चाहिए न कि वि०सं० १६७६ के लगभग, जैसा कि श्री नाहटा ने वतलाया है।

रघुवंशमहाकाव्य के टीकाकार के रूप में भी धर्ममेरु नामक एक खरतरगच्छीय मुनि का उल्लेख मिलता है।" श्री अगरचन्द नाहटा ने धर्ममेरु को उपरोक्त चरणधर्म के शिष्य धर्ममेरु से अभिन्न वतलाया जबिक अन्यत्र इन्हें मुनिप्रभगिण का शिष्य बतलाया गया है।" चूकि यह कृति अद्याविध अप्रकाशित है और इसकी पाण्डुलिपियां भी अध्ययनार्थ सुलभ नहीं हैं अतः इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी कह पाना कठिन है।

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों से हमें जिनभद्रसूरि के छह शिष्यों-जयसागर उपाध्याय, रत्नर्भूर्ति, दयाकमल, कमलसंयमगणि, समयप्रभ और महोपाध्याय सिद्धान्तरुचि का उल्लेख प्राप्त हो जाता है।

जिनभद्रसूरि शाखा में हुए मुनि कनकसोम द्वारा रचित हरिकेशीसंधि (रचनाकाल वि०सं० १६४०/ई०स०१५८४) की प्रशस्ति" में रचनाकार द्वारा दी गयी लम्बी गुर्वावली मिलती है, जो इस प्रकार है:

जिनभद्रसूरि->वाचक पद्ममेरु->मितवर्धन->मेरुतिलक->दयाकलश-> अमरमणिक्य→कनकसोम (वि०सं० १६४०/ई० सन् १५८४ में हरिकेशीसंधि के रचनाकार)

मुनि कनकसोम द्वारा रचित विभिन्न कृतियाँ मिलती हैं, जो इस प्रकार हैं-

> चारित्रपंचकअवचूरि कालकाचार्यकथा *गुणस्थानविवरणचौपाई* जिनपालितजिन रक्षितरास *आषाढ़* भूतिधमाल आद्रककुमारधमाल हरिबलसंधि मंगलकलशरास नेमिनाथफागु मेघकुमाररास जयतिपदवैलि

रचनाकाल वि०सं० १६१५ रचनाकाल वि०सं० १६३२ रचनाकाल वि०सं० १६३१ रचनाकाल वि०सं० १६३२ रचनाकाल वि०सं० १६३२ रचनाकाल वि०सं० १६४४ रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती मध्य रचनाकाल वि०सं० १६४३ रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती मध्य रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती मध्य रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती मध्य ६० : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

इसी शाखा में हुए मुनि साधुकीर्ति ने वि०सं०१६१८/ई०स० १५६३ में *सत्तरभेदीपूजा* नामक कृति की रचना की। इनके द्वारा रचित कुछ अन्य कृतियां भी मिलती हैं जो निम्नानुसार हैं-

संघपड्रकटीका रचनाकाल वि०सं० १६१६ रचनाकाल वि०सं० १६२४ आषाढ्भृतिप्रबन्धरास रचनाकाल वि०सं० १६२४ मौनएकादशीस्तोत्र गुरुमहत्तागीत रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती वाग्भटालंकारटीका रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती विशेषनाममाला चतुर्दशस्वप्न रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती कर्मग्रन्थस्तवक रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती कर्मग्रन्थचतुष्टयस्तवक जीवविचारप्रकरणबालावबोध रचनाकाल वि०सं० १७वीं शती कायस्थितिप्रकरणबालावबोध रचनाकाल वि०सं० १६२३

मौनएकादशीस्तोत्र की प्रशस्ति[ः] में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैः

मतिवर्धन→मेरुतिलक-→दयाकलश-→अमरमाणिक्य-→साधुकीर्ति (रचनाकार)

इस प्रकार अमरमाणिक्य के दो शिष्यों साधुकीर्ति और कनकसोम के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

दसविधियतिधर्मगीत (रचनाकाल वि०सं०१६६४) के रचनाकार कनक-प्रभसूरि³³ तथा वि०सं०१६६८/ई०स०१६१२ में रचित *होलिकागीत* के रचियता रंगकुशल³⁴ उपरकथित अमरमणिक्य के शिष्य कनकसोम के शिष्य थे।

रंगकुशल द्वारा रचित *अमरसेनवयरसेनसंधि* (रचनाकाल वि०सं० १६४४), *महावीरसत्ताइसभवस्तवन* (वि०सं०१६७०); *अन्तरंगफाग, स्थूलिभद्र-*रास आदि कृतियां भी मिलती हैं।^{३४}

अमरमाणिक्य के दूसरे शिष्य साधुकीर्ति के पट्टधर साधुसुन्दर हुए जिनके द्वारा रिवत युक्तिरत्नाकर, धातुरत्नाकर (रचनाकाल वि०सं०१६८० कार्तिक विद १५), शब्दरत्नाकर शब्दभेदनाममाला, पार्श्वस्तुति आदि कृतियां मिलती हैं। अमरमाणिक्य के दूसरे शिष्य साधुवर्धन नामक रचनाकार हुए हैं जिनके द्वारा रिवत हितोपदेशस्वाध्याय, अद्वाइसलिब्धस्तवन (वि०सं०१६२६) आदि विभिन्न छोटी-बड़ी कृतियां प्राप्त होती हैं। भ

अट्टाइसलब्धिस्तवने की प्रशस्ति में रचनाकार ने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है: अमरमाणिक्य
जिनभद्रसूरिशाखा के साधुकीर्ति(सुप्रसिद्ध रचनाकार) कनकसोम
साधुसुन्दर (वि०सं० १६७७-८३ के मध्य रचित
४रचनार्ये उपलब्ध)
।
विमलकीर्ति
।
विजयहर्ष

धर्मसिंह अपरनाम धर्मवर्धन (वि०सं० १७२६ में *अड्डाइसलब्धिस्तवन* द्रष्टव्य-धर्मवर्धनग्रन्थावली-संपा० नाहटाद्वय के रचनाकार)

साधुसुन्दर की रचनायें-

- 9. *उक्तिरत्नाकर* रचनाकाल-वि०सं० १६७०-७४ के मध्य
- २. *धातुरत्नाकर* रचनाकाल-वि०सं० १६८० कार्तिकवदि १५
- 3. शब्दरत्नाकर अपरनाम शब्दभेदनाममाला
- ४. पार्श्वस्तुति रचनाकाल-वि०सं० १६८३
- ५. युक्तिसंग्रह

वि०सं० १६८१ में लिखी गयी *अभिधानचिन्तामणिनाममाला* की प्रशस्ति^{**} में प्रतिलिपिकार राजकीर्तिगणि ने अपनी गुरु-परम्परा निम्नानुसार दी है:-

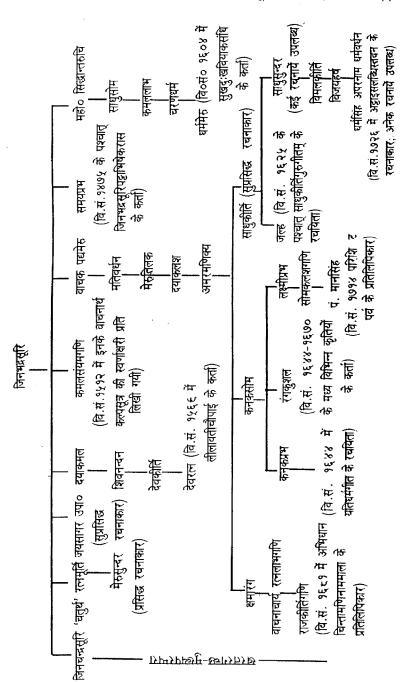
अमरमाणिक्य→क्षमारंग गणि→वाचनाचार्य रत्नलाभ गणि→राजकीर्ति गणि (वि०सं० १६८१/ई०स०१६२५ में अभिधानचिन्तामणिनाममाला के प्रति-लिपिकार)

अमरमाणिक्य के दूसरे शिष्य कनकसोम, जिनका ऊपर उल्लेख आ चुका है, की परम्परा में हुए पं० मानसिंह ने वि०सं० १७१४ में परिशिष्टपर्व की प्रतिलिपि की, जिसकी प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा है, जो इस प्रकार है:-

कनक्सोमगणि→ लक्ष्मीप्रभगणि→ सोमकलशगणि→ पं० मानसिंह (वि०सं० १७१४/ई०स० १६५८ में *परिशिष्टपर्व* के प्रतिलिपिकार) उपरोक्त प्रशस्तिगत छोटी-छोटी गुर्वावितयों के आधार पर जिनभद्र-सूरिशाखा के मुनिजनों की एक विस्तृत गुर्वावली संकलित की जा सकती है जो इस प्रकार है:-

तालिका-१

वर्धमानसूरि अभयदेवसूरि 'नवांगीवृत्तिकार' ्र जिनचद्रसूरि 'द्वितीय' जिनेश्वरसूरि 'द्वितीय' जिनप्रबोधसूरि जनकुशलसूरि ↓ जिनपद्मसूरि ↓ जिनलब्धिसूरि जिनोदयसूरि ।



विक्रमसम्वत् की सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुए मुनि नयरंग भी खरतरगच्छ की इसी शाखा से सम्बद्ध थे। उनके द्वारा रचित विभिन्न कृतियां प्राप्त होती हैं, जो इस प्रकार हैं-

- १. विधिकंदली (प्राकृत)
- २. विधिकंदली टीका (संस्कृत) वि०सं० १६२५
- ३. परमहंससंबोधचरित (संस्कृत) वि०सं० १६२४
- ४. मुनिपतिचौपाई (मरु-गूर्जर) वि०सं० १६१५
- ५. सत्तरभेदीपूजा (मरु-गूर्जर) वि०सं० १६१८
- ६. अर्जुनमालीसंधि (मरु-गूर्जर) वि०सं० १६२१
- ७. केशीप्रदेशीसंधि (मरु-गूर्जर)
- नौतमपृच्छा (मरु-गूर्जर)
- ६. गौतमस्वामीछंद (मरे-गूर्जर)
- १०. जिनप्रतिमाछत्तीसी (मरु-गूर्जर)
- 99. जिनप्रतिमाचौबीसी (मरु-गूर्जर)

मोहनलाल दलीचंद देसाई ने इनकी गुर्वावली दी है, जो इस प्रकार है :-जिनभद्रसूरि शाखां'....समयध्वज→ज्ञानमंदिर→ गुणशेखर→ नयरंग (रचनाकार)

नयरंग के शिष्य विनयविमल हुए जिनके द्वारा रचित अनाथीसाधु-संधि (वि०सं०१६४७/ई०स०१५६१ अरहन्नकरास आदि कृतियां मिलती हैं।

इसी प्रकार नयरंग के प्रिशिष्य और विनयविमल के शिष्य राजिसंह द्वारा रिचत विद्याविलासरास (वि०सं० १६७६), चम्पावतीचौपाई, आराम-शोभाचौपाई (वि०सं० १६८७) तथा कई गीत एवं स्तवन आदि प्राप्त होते हैं। राजिसंह की परम्परा आगे चली अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में हमारे पास कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है किन्तु वि०सं०१७५४ में लिखी गयी अमर-सेनवयरसेनचतुष्पदी की प्रति की प्रशस्ति में प्रतिलिपिकार पंडित मानिसंह ने अपनी गुरु-परम्परा दी है जिसका प्रारम्भ भी वाचनाचार्य समयध्वज से ही होता है:

जिनभद्रसूरि.....वाचनाचार्य समयध्वज→वाचक ज्ञानमंदिर
→वाचक गुणशेखर→वाचक नयरंग→वाचक विनयविमल→वाचक धर्ममंदिर
→उपा० पुण्यकलश→उपा० जयरंगजी→वाचक तिलकचंद्र→पंडित मानसिंह
(वि०सं०१७५४/ई०स०१६६८ में अमरसेनवयरसेनचतुष्यदी के प्रतिलिपिकार)

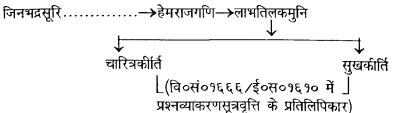
समयध्वज से प्रारम्भ उपरोक्त दोनों गुर्वाविलयाँ के परस्पर समा-योजन से एक तालिका निर्मित होती है, जो इस प्रकार है:

तालिका-२

जिनभद्रसूरि वाचनाचार्य समयध्वज वाचक ज्ञानमंदिर वाचक गुणशेखर वाचक नयरंग (वि०सं०१६२५ में विविधकन्दलीटीका के कर्ता; विभिन्न कृतियों के रचनाकार) वाचक विनयविमल (वि०सं० १६४७ में अनामीसाधुसंधि के रचनाकार; विभिन्न रचनायें उपलब्ध) वाचक धर्ममंदिर गणि राजसिंह (वि०सं० १६७६ में विद्याविलासरास के रचनाकार; अन्य कई रचनायें उपलब्ध. वाचक धर्ममंदिर गणि उपा.पूण्यकलश उपा.जयरंगजी वाचक तिलकचन्द पंडित मानसिंह (वि०सं०१७५४/ई०स०१६६८ में अमरसेनवयरसेनचतुष्पदी के प्रतिलिपिकार)

वि०सं० १६६६ में लिखी गयी *प्रश्नव्याकरणसूत्रवृत्ति* की प्रशस्ति¹ से ज्ञात होता है कि इसके प्रतिलिपिकार चारित्रकीर्ति और सुखकीर्ति भी ६६ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

जिनभद्रसूरिशाखा से ही सम्बद्ध थे। इन्होंने अपनी गुर्वावली निम्नानुसार दी है:



औपपातिकसूत्र की वि०सं०/१७१७ में लिखी गयी प्रति की प्रशस्ति" में प्रतिलिपिकार कमलनंदन मुनि ने भी स्वयं को जिनभद्रसूरिशाखा से सम्बद्ध बतलाते हुए अपनी गुर्वावली दी है, जो इस प्रकार है:

जिनभद्रसूरि...... नेवजयमंदिर \rightarrow सौभाग्यमेरु \rightarrow इलाचीनिधान \rightarrow पं०जीवरत्न \rightarrow कमलनंदनमुनि(वि०सं०१७१७/ई०स०१६६१ में *औपपातिक*-सूत्र के प्रतिलिपिकार)

जिनभद्रसूरिशाखा की पूर्वप्रदर्शित दोनों तालिकाओं के मुनिजनों और उपरोक्त चारित्रकीर्ति एवं कमलनंदन मुनि आदि के बीच क्या सम्बन्ध था, यह ज्ञात नहीं होता।

विक्रम सम्वत् की १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से इस शाखा से सम्बद्ध साक्ष्यों की विरलता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस समय के पश्चात् इस शाखा के अनुयायियों की संख्या कम होने लगी। महोपाध्याय विनययागर जी के अनुसार इस शाखा के कुछ मुनिजन आज भी विद्यमान हैं।

संदर्भ

- मुनि कांतिसागर, शत्रुंजयवैभव, कुशल पुष्प४, जयपुर १६६०ई०, प्रष्ठ ५२,
- २. वही
- ३. वही, पृष्ट ५८
- ४. द्रष्टव्य- जिनभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों की तालिका-
- ५. मोहनलाल दलीचंद देसाई, *जैनगूर्जरकविओ*, भाग**, नवीन संस्करण**, संपा०- डा० जयन्त कोठारी, अहमदाबाद १६८६ई०, पृष्ठ ५७.

- ६. भंवरलाल नाहटा, ''स्व० पूर्णचन्द्रजी नाहरना संग्रहनी स्वर्णाक्षरी प्रतिओ" जैनसत्यप्रकाश, वर्ष २०, अंक१२, पृष्ठ २१३-३४.
- 9. Vidhatri Vora, Ed. Catalogue of Gujarati Manuscripts, L.D.Series No-71, Ahmedabad -1978, p-110.
- ८. वही, पृष्ठ ५६२.
- £. वही
- १०. मोहनलाल दलीचंद देसाई, पूर्वोक्त, भाग३, पृष्ठ ३३५-३६.
- 99. अगरचंद नाहटा एवं भंवरलाल नाहटा, संपा० मणिधारी जिनचन्द्रसुरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, दिल्ली १६७१ ई०, भाग२, खरतर-गच्छीय साहित्य सूची, पृष्ठ ६०.
- १२. शीतिकंटमिश्र, *हिन्दीजैनसाहित्यका बृहद् इतिहास,* भाग२, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला क्रमांक ६६, वाराणसी १६६४ ई०, पुष्ठ २३०.
- १३. देसाई, पूर्वोक्त, भाग२, (नवीन संस्करण), पृष्ठ १८-१६.
- १४. खरतरगच्छीय साहित्यसूची, पृष्ट७.
- 94. H.D. Velanker, Ed. Jinaratnakosha, Poona-1944, p-325.
- १६. खरतरगच्छीय साहित्यसूची, पृष्ठ२४.
- 99. Jinaratnakosha p-325.
- १८. देसाई, पूर्वोक्त, भाग२, (नवीन संस्करण) पृष्ठ १४८.४६.
- १६. वही, पृष्ट १४७.४६.
- Ro. Vidhatri Vora, Ibid, p-305.
- २१. देसाई, पूर्वोक्त, भाग२, (नवीन संस्करण) पृष्ठ ४६-५०.
- २२. Vidhatri Vora, Ibid, p-305.
- २३. देसाई, पूर्वोक्त, भाग३, (नवीन संस्करण) प्रष्ठ ६३.
- २४.वही, भाग२, (नवीन संस्करण) पुष्ठ २३१-३२.
- २५. शीतिंकंठ मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ ४२३२.
- २६. Vidhatri Vora, Ibid, p-207, 383.। धर्मवर्धन ग्रन्थावली, संपा०-अगरचंद भंवरलाल नाहटा, बीकानेर वि०सं०२०१७. भूमिका.
- રહ. Ibid, p-207.
- २८ अमृतलाल मगनलाल शाह,संग्रा०-संपा०, श्रीप्रशस्तिसंग्रह, अहमदाबाद वि०सं० १६६६ भाग२, प्रशस्ति क्रमांक ८२१, पृष्ट १८६.
- २६.वही, भाग२, प्रशस्ति क्रमांक ८२१, पुष्ठ २२३.
- ३०. देसाई, पूर्वोक्त, भाग३, (नवीन संस्करण), पृष्ठ ६२-६३.
- 39. वही

६८ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

- ३२. वही, भाग२, पृष्ठ २४४.
- ३३. वही, भाग३, नवीन संस्करण, पृष्ठ २२७-२८.
- ३४. अमृतलाल मगनलाल शाह, पूर्वोक्त, भाग२, प्रशस्ति क्रमांक ६६८. पृष्ठ १६२.
- ३५. वही, भाग२, प्रशस्ति क्रमांक ८३५, पृष्ठ २२६.

आचार्य जिनभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित और अद्याविध उपलब्ध जिन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों की सूची

क्रमांक	प्रतिष्ठा वर्ष वि०सं०	तिथि-वार	लेख का स्वरूप	वर्तमान प्राप्ति	संदर्भग्रन्थ
	L			स्थान	
9.	980E		परिकर के दोनों ओर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, मैसलमेर	पूरनचंद नाहर, संपा० जैनलेखसंग्रह, भाग३, लेखांक २६२३.
₹.	१४७€	माघसुदि४	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथजिनालय, थराद	दीलतसिंह लोढ़ा, संपा., जैनप्रतिमा लेखसंग्रह, लेखांक६६
₹.	980€	माघसुदि४	पार्श्वनाथ की घातु की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	देरासर, जैसलमेर	नैनलेखसंग्रह,भाग३, लेखांक २४६७.
8.	980€	माघसुदि४	महावीर की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	नवधरे का मंदिर, दिल्ली	वर्टा, भाग ः , लेखांक ४६५.
y .	980€	माघसुदि४	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शांतिनाथ देरासर, वीसनगर	मुनिबुद्धिसागर, संपा., जैनधातुप्रतिमालेख संप्रह भागभ, लेखांक ५२०.
ξ.	980€		अजितनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शांतिनाथ जिनालय, बोहारन टोला, लखनऊ	जैनलेखसंग्रह, भाग२, लेखांक १५०३.
६अ	9858.		स्फटिक प्रतिमा के सिंह्यसन पर उत्कीर्ण लेख	संभवनाथ देरासर, जैसलमेर	अगरचंद भंबरलाल नाहटा, वीकानेर जैनलेखसंग्रह लेखांक २६६२
৩.	98€8	ज्येष्ठसुदि५	वासुपूज्य की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, लोद्रवा	जैनलेखसंग्रह, भाग२, लेखांक २५४७.
τ.	98८8	ज्येष्ठसुदि१५	अजितनाथ की धातु की पंचतीर्ची प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय, धामनोद	विनयसागर, संघा., प्रतिष्ठालेखसंग्रह, लेखांक २५०.
€.	१४८४		बर्धमान की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	महावीर जिनालय, माणिकतल्ला, कलकत्ता	जैनलेखसंग्रह, भाग१, लेखांक ११६.
90.	9850	मार्गशीर्ष वदि ६	सुमतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	भंडारस्थ प्रतिमा, संभवनाथजिनालय, जैसलमेर	वर्टी, माग३, लेखांक २४३६.
99.	9855	फाल्गुनवदि१		वन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	वहीं, भाग३, लेखांक २३०३.

		1	150		
92.	3855	फाल्गुनवदिश	नेमिनाथ की धातु की	महावीर जिनालय,	अगरचंद नाहटा,
			प्रतिमा पर उत्कीर्ण	बीकानेर	भवरलाल नाहटा,
			लेख		संपा०, बीकानेर जैन
		 _		ļ	लेखसंग्रह,लेखांक१२७३.
93.	98cc	फाल्गुनवदि १		सुपार्श्वनाथ जिनालय,	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
1		1	की प्रतिमा पर	अहमदाबाद	माग१, लेखांक ८७७.
			उत्कीर्ण लेख		
98.	985E	आषाढसुदि १	धातु की पंचतीर्थी	महावीर जिनालय,	प्रतिष्ठालेखसंग्रह,
		1	जिनप्रतिमा पर	सांगानेर	लेखांक २७५:
			उत्कीर्ण लेख		
94.	985£	माघसुदि १०	महावीर की धातु की	जैनदेरासर, महुवा	मुनिविद्याविजयजी,संपाo,
		शुक्रवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण	1	प्राचीनलेखसंब्रह,
-			लेख		लेखांक १४२.
9٤.	9860	वैशाख वदि ६	आदिनाथ की धातु	पार्श्वनाथ देरासर,	प्रतिप्टालेखसंग्रह,
1		1	की पंचतीर्थी प्रतिमा	जडाउ	लेखांक २७७.
		1	पर उत्कीर्ण लेख		
90.	98E0	"	,,	सुमितिनाथ जिनालय,	वहीं, लेखांक ३७६.
		1	ĺ	जयपुर	1
95.	98€२	-	आदिनाथ की धातु	जैन मंदिर, पटना	जैनलेखसंब्रह, भाग१,
1			की प्रतिमा पर		लेखांक २७५.
		1	उत्कीर्ण लेख		
9£.	98E2	-	"	गौडी पार्श्वनाथ	मुनिकांतिसागर, संघा०,
1		1		जिनालय, पायधुनी,	जैनधातुप्रतिमालेख,
Ī		1		मुम्बई	तेखांक हर.
₹0.	98 E R	तिथिविहीन	सुमतिनाथ की धातु	पार्श्वनाथ जिनालय,	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
			की प्रतिमा पर	देवसानो पाडो.	माग १,
			उत्कीर्ण लेख	अहमदाबाद	लेखांक १०६६.
₹9.	98£3	फाल्गुन	प्रशस्ति लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ	जैनलेखसंग्रह, भाग३,
, ,		वदि १		जिनालय, जैसलमेर	लेखांक २११४.
२२.	98£3	,,	पद्यप्रभ की धातु की	पार्श्वनाथ जिनालय.	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह,
```		1	पंचतीर्थी प्रतिमा पर	सरदारशहर	नेखांक २३८५.
	4,	1	उत्कीर्ण लेख		1961
₹₹.	98€3	"	सुमतिनाथ की प्रतिमा	सुपार्श्वनाथ जिनालय.	नैनलेखसंब्रह, भाग३,
,			पर उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर	नेपायक्षसम्भः, मायदः, लेखांक २१६०.
₹४.	98€3	<del></del>	आदिनाथ की धातु	आदिनाथ जिनालय,	जैनप्रतिमालेखसंग्रह,
30.	,,,,		की प्रतिमा पर	थराद	जनप्रातमालखसप्रह, लेखांक ६३.
	-	1	उत्कीर्ण लेख	74 (14	लखाक ६३.
२५.	98£3	<del>,,</del>	सागरचन्दसुरि की	पार्श्वनाथ जिनालय,	3 charing
41.	1054		प्रतिमा पर उत्कीर्ण	पश्चिनाय ।जनालय, जैसलमेर	नैनलेखसंग्रह, माग३,
			व्रातमा पर उत्काण लेख	मात्र <b>ामर</b>	लेखांक २१३८.
₹€.	98£3	<del> ,-</del>	लख महावीर की धातु की	बड़ा जैन मंदिर,	LA
44.	3053	j	महावार का धातु का पंचतीर्थी प्रतिमा पर	बड़ा जन मादर, नागीर	प्रतिष्ठालेखसंग्रह,
		}		Pirit	लेखांक २६८.
			उत्कीर्ण लेख	<del></del>	1
२७.	98€3	फाल्गुनवदि १	विमलनाथ की धातु	घर देरासर, कोल	वहीं, लेखांक ३००.
		बुद्धवार	की पंचतीर्थी प्रतिमा	l	1
ļ		19	पर उत्कीर्ण लेख	ł	1

<b>२</b> τ.	98€3		महावीर की प्रतिमा	आदिनाथ जिनालय,	जैनलेखसंग्रह, भाग२,
			पर उत्कीर्ण लेख	नागीर	लेखांक १२४४.
₹£.	१४€३		शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा पर	आदिनाथ जिनालय, नाहटों की गवाड,	र्याकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखांक १४७६.
[			उत्कीर्ण लेख	बीकानेर	
₹0.	98£3	-	निमनाथ के परिकर पर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर	वर्हा, लेखांक २६७४.
₹9.	98E8		संभवनाथ की	देहरी क्रमांक	मुनि कंचनसागर, संग्रा.
`			पंचतीर्थी जिनप्रतिमा	६०६/५ शत्रुंजय	संपा., शञ्जयगिरिराज
			पर उत्कीर्ण लेख		दर्शन, लेखांक ४८३.
<b>३</b> २.	98E8	माधसुदि ११	शीतलनाथ की प्रतिमा		वहीं, लेखांक २५६.
1		गुरुवार	पर उत्कीर्ण लेख		
₹₹.	98€€	वैशाखवदि ४	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा	चन्तामणि पार्श्वनाथ	वीकानेरजैनलेखसंग्रह,
ļ			पर उत्कीर्ण लेख	जनालय, बीकानेर	लेखांक ६८८.
₹8.	१४€६	वैशाखसुदि ६	धर्मनाथ की धातु की	शांतिनाथ जिनालय,	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
		सोमवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण	शांतिनाथ पोल,	माग१, लेखांक १२६७.
		1	लेख	अहमदाबाद	,
३५.	98£0	मार्गशीर्षवदि ३	आदिनाथ की प्रतिमा	चन्द्रप्रभ जिनालय,	जैनलेखसंग्रह, भाग३,
İ		1	पर उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर	लेखांक २३१३.
₹.	98£10	मार्गशीर्षवदि ३	पार्श्वनाथ की प्रतिमा	पद्मप्रभ जिनालय,	वहीं, भाग १,
[			पर उत्कीर्ण लेख	अजीमगंज, मुशिंदावाद	लेखांक ८.
₹७.	98E0	मार्गशीर्षवदि ३	चरणचौकी पर	संभवनाथ जिनालय,	वहीं, भाग ३, लेखांक
			उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर	२१४५.
₹€.	98E0		शांतिनाथ की प्रतिमा	सेट थाहरूशाह का	वही, भाग ३.
l			पर उत्कीर्ण लेख	देरासर, जैसलमेर	लेखांक २४५१.
₹£.	१४€७	मार्गशीर्षवदि ३	धर्मनाथ की प्रतिमा	वही	वहीं, भाग ३,
			पर उत्कीर्ण लेख	1	नेखांक २४५२.
80.	98€0	मार्गशीर्षवदि ३	सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा	संभवनाथ जिनालय,	वहीं, भाग ३,
		बुद्धवार	की चरणचौकी पर उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर	लेखांक २१४६.
89.	98E0	मार्गशीर्षवदि ३	नंदीश्वर द्वीप की	वही	वर्हा, भाग ३,
		बुद्धवार	पट्टिका पर उत्कीर्ण लेख		नेखांक २१४२.
82.	98€0	तिथिविहीन	चतुर्विशति पट्टिका पर	संभवनाथ जिनालय,	वहीं, भाग ३,
			उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर	लेखांक २१४३.
83:	98€0	तिथिविहीन	पार्श्वनाथ के सिंहासन	संभवनाथ जिनालय,	र्याकानेर जैनलेखसंग्रह.
			पर उत्कीर्ण लेख	<b>जैसलमेर</b>	लेखांक २६६३.
88.	१४६७	तिथिविहीन	जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वही	वहीं, लेखांक २६६४.
<b>४</b> ೬.	98 <del>E</del> 0	तिथिविहीन	शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वही	वहीं, लेखांक २६६५.
४६.	9860	तिथिविहीन	वासुपूज्य के परिकर पर उत्कीर्ण लेख	वहीं	वहीं, लेखांक २६६८.

४७.	98€€	माधसुदि १३	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय, खेरालु	गैनधातुप्रतिमा लेखसंग्रह, माग १, बेखांक ७६०.
<b>8</b> τ.	98€€	फाल्गुनसुदि२	कुन्थुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय, सेठों की हवेली के पास, उदयपुर	जैनलेखसंग्रह, भाग२, लेखांक १६००.
8€.	१५०१	शनिवार	शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणि जी का मंदिर, बीकानेर	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखांक ८४७.
<b>ξ</b> ο.	१५०१	आषाढवदि स	सुमतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	मोतीशाह की टूंक, शत्रुंजय	मुनिकांतिसागर,संघा., शत्रुजंयवैमव, लेखांक ६३.
ሂ9.	ξολί	तिथिविहीन	श्रेयांशनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	धर्मनाथ जिनालय, मोतीचौक, जोधपुर	जैनलेखसंग्रह, भाग१, लेखांक ६२०.
५२.	१५०३	तिथिविहीन	अजितनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शांतिनाथ जिनालयँ, नागीर	वर्हा, भाग २, लेखांक १३२५ एवं प्रतिप्टालेखसंग्रह, लेखांक ३७४
· 동국	9503	तिथिविहीन	संभवनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	वहीं, माग ३, लेखांक २३२२.
<b>አ</b> ጸ.	१५०३	तिथिविहीन	शांतिनाथ की घातु की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	प्रतिप्टालेखसंग्रह, नेखांक ३७५.
<b>ሂሂ</b> .	१५०३	अस्पष्ट	धातुप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, गोगा दरवाजा, पार्श्वनाथ- पार्क, बीकानेर	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखांक १६४५.
५६.	१५०४	वैशाख वदि ७ बुद्धवार	शीतलनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पंचायती जैन मंदिर, जयपुर	प्रतिप्टालेखसंग्रह, लेखांक ३७६
ধূত.	१५०४	वैशाख वदि ७ बुद्धवार	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शांतिनाथ जिनालय, सेमलिया	वहीं, लेखांक ३७७.
<b>γ</b> ε.	१५०४	वैशाख वदि ७ बुद्धवार	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शीतलनाथ जिनालय, बालोतरा	गैनलेखसंग्रह, भाग१, लेखांक ३७१.
ų€.	१५०४	मार्गशीर्ष सुदि ७	"	चौसठिया जी का मंदिर, नागौर	प्रतिप्टालेखसंब्रह, लेखांक ३८०.
<b>ξ</b> ο.	<b>ን</b> ሂ <b>ං</b> ሂ	वैशाखसुदि २ बुद्धवार	सुविधिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ चैत्य, थराद	जैनप्रतिमालेखसंग्रह, लेखांक ६७.
€,9.	१५०५	वैशाखसुदि २ बुद्धवार	सुमतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रमिमा पर उत्कीर्ण लेख	शीतलनाथ जिनालय, रामपुरा	प्रतिप्टालेखसंग्रह, लेखांक ३६०.
६२.	9505	ज्येष्ट?	पार्श्वनाथ के परिकर पर उत्कीर्ण लेख	संभवनाथ जिनालय, जैसलमेर	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखांक २६६५.

€₹.	9404	्याष्ट्रायाच्या	आदिनाथ की प्रतिमा		T : 8
44.	1101	આવા હતી વહ		बालावसही, शत्रुंजय	शत्रुंजयवैभव,
			पर उत्कीर्ण लेख		लेखांक १०३.
ξγ.	१५०५	पौषवदि १५	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा	शांतिनाथ जिनालय,	बुद्धिसागर, जैनधात्
1 1			पर उत्कीर्ण लेख	खंभात	प्रतिमालेखसंब्रह, भाग२,
					लेखांक ६३६.
Ęy.	9404	वैशाखसुदि ७	अजितनाथ की धातु	संभवनाथ देरासर.	वहीं, भाग १,
			की प्रतिमा पर	झवेरीवाड.	लेखांक ८०६.
			उत्कीर्ण लेख	अहमदाबाद	ridita coc.
ξξ.	१५०६	पौषसदि १५	सुविधिनाथ की पेचतीर्थी	थाटिनाश जिनानग	प्रतिप्टालेखसंग्रह,
		सोमवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	क्षायनाच क्षित्रालय,	भावण्डालखसग्रह,
<b>€</b> 0.	9404	तिथिविहीन	परिकर पर उत्कीर्ण		नेखांक ४०४.
50.	1202	।तायापहान	1	पार्श्वनाथ जिनालय,	जैनलेखसंब्रह, भाग३,
		10000	लेख	जैसलमेर	लेखांक २६६८.
ξc.	१५०६	तिथिविहीन	नेमिनाथ के तोरण	संभवनाथ जिनालय,	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह,
			पर उत्कीर्ण लेख	<b>जैसलमेर</b>	लेखांक २६६५.
Ę€.	१५०७	ज्येष्ठसुदि १	पार्श्वनाथ की प्रतिमा	चन्द्रप्रभ जिनालय,	जैनलेखसंब्रह, भाग३,
11			पर उत्कीर्ण लेख	<b>जैसलमेर</b>	लेखांक २३२३.
90.	१५०७	ज्येष्ठसुदि २	सुमतिनाथ की धातु की	नवघरे का मंदिर	जैनलेखसंब्रह, भाग१.
		~	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	दिल्ली	लेखांक ४७३.
يون	१५०७	ज्येष्ठसदि २	आदिनाथ की घातु	पंचायती मंदिर,	वहीं, भाग २,
•		1	की प्रतिमा का लेख	लस्कर, ग्वालियर	वहा, भाग २,
७२.	१०७	"	शांतिनाथ की प्रतिमा		नेखांक १४००.
1 04.	1100			चिन्तामणिजी का	र्वाकानेरजैनलेखसंब्रह,
L		,,	पर उत्कीर्ण लेख	मंदिर, बीकानेर	लेखांक ६१५.
<b>93.</b> □	१५०७	"	सुमतिनाथ की प्रतिमा	वहीं,	वर्हा, लेखांक ७१६.
			पर उत्कीर्ण लेख		
૭૪.	१५०७	"	शांतिनाथ की प्रतिमा	आदिनाथ जिनालय,	वर्हा, लेखांक १४३६.
		1		बीकानेर	
৩५.	१५०७	"	वासुपूज्य की धातु	वीर जिनालय,	वहीं, लेखांक १३२१.
		1		बीकानेर	1,, (1,0114) 7247.
			पर उत्कीर्ण लेख		
છદ્દ.	9500	"		वन्द्रप्रभ जिनालय,	जैनलेखसंद्रह, भाग३,
`.		1		जैसलमेर	गगलखसप्रह, भाग३,
৩৩.	950E		श्रेयांसनाथ की घातु की	THE TOT PERSON	लेखांक २३२४.
55.	,,,,,,	MICH 12	त्रपासनाय का धातु का प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	तुपारवनाय ।जनालय,	र्वाकानेरजैनलेखसंग्रह,
			प्रातमा पर उत्काप लख	नाहटा का गवाड़,	लेखांक १८२३.
<u> </u>	01 - 6	-64-6		बीकानेर	
<b>૭</b> ς.	940E	कातिकसुदि १३	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा पर	चन्द्रप्रभ जिनालय,	नैनलेखसंग्रह, भाग३,
				<b>जैसलमेर</b>	लेखाक २३२८
છ€.	9¥0€			पार्श्वनाथ जिनालय,	वीकानेरजैनलेखसंग्रह,
			पर उत्कीर्ण लेख	गोगा दरवाजा,	लेखांक १६६०.
				बीकानेर	
ζο.	१५०६	मार्गशीर्षस्दि ६		संभवनाथ जिनालय,	जैनलेखसंग्रह, भाग३,
	•		की पंचतीर्थी प्रतिमा	जैसलमेर	लेखांक २१४८.
			पर उत्कीर्ण लेख	EININ'IX	राजाक ४३४६.
₹9.	940E	मार्गशीर्षसुदि ६		211G 1101 Gran	L
٠,٠	1200	ा वसाय द्वाप द		आदिनाथ जिनालय,	प्राचीनलेखसंब्रह,
LL				जामनगर	लेखांक २४३.

<b>ε</b> ₹.	940E	"	आदिनाथ की धातु की	सुपार्श्वनाथ जिनालय,	वीकानेरजैनलेखसंग्रह,
		,	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	नाहटों की गवाड़,	लेखांक १८४३.
				बीकानेर	
ς₹.	940E	",	विमलनाथ की धातु की	शांतिनाथ जिनालय,	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
1		1	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	छांणी, बडोदरा	माग २, लेखांक २५८.
ςγ.	940E	"	सुमतिनाथ की धातु की	चेन्तामणि पार्श्वनाथ	वहीं, भाग २,
		İ	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जनालय, खंभात	लेखांक ५३०.
τζ.	940E	**	सुमतिनाथ की पाषाण	शीतलनाथ जिनालय,	र्याकानेर जैनलेखसंग्रह,
			की प्रतिमा पर उत्कीर्ण	<b>जै</b> सलमेर	लेखांक २८२३.
			लेख		
<b>ςξ</b> .	940E	मार्गशीर्षसुदि७		महावीर जिनालय,	वहीं, लेखांक १८६५.
Í				आसानियों का चीक,	
				बीकानेर	
ᢏ७.	940E	"	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वासुपूज्य जिनालय,	वहीं, लेखांक १७१८.
		<del> </del>	प्रतिमा पर उत्कीण लेख	रागडी चौक, वीकानेर	
ζζ.	940E	,,	कुन्थुनाथ की धातु की	शातिनाथ देशसर,	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
		,,	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख		भाग १, लेखांक ५०६.
ξĘ.	૧ં૪૦€	"	] "	वीर जिनालय,	वीकानेरजैनलेखसंग्रह,
				आसामियों का चौक,	लेखांक १८६५.
		<del> </del>		बीकानेर	
€o.	940 <del>€</del>	1 "	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय,	जैनलेखसंग्रह, भाग २,
			प्रातमा पर उत्काण लख	नागार	लेखांक १२५५.
€9.	gyot	माघसुदि ५	विमलनाथ की धातु की	चारखान का मादर,	नैनलेखसंग्रह, भाग१,
		426	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख		लेखांक ५०६.
€₹.	9५0€	मागशावसुदि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पश्वनाथ जिनालय,	वीकानेरजैनलेखसंग्रह,
			व्यातमा पर उत्काण लख	पाश्यनाथ पाक, गागा दरवाजा, बीकानेर	लेखांक १६८०.
	0/ = (	माघसुदि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा	राखाजा, बाकानर शंखेश्वर पार्श्वनाथ	4
€₹.	940£	HIAGIA		राखस्वर पारवनाय जिनालय, वीकानेर	जैनलेखसंब्रह, भाग२, लेखांक १३३३.
	940£		वासुपुज्य की धातु की		वही, भाग१,
€8.	1405		प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	शातलगय ।जनालय, जा <b>लो</b> नस	वहा, भागत. लेखांक ७३२.
	940£	तिथिविहीन	शांतिनाथ की धातु की		नेनधातुप्रतिमालेख,
Ey.	1405	KIIMIMOIT	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	ृत्ताताय ।जगालय, विकटीहातार स्टब्ह	गनधातुत्रातमालख, लेखांक १९४.
	940£	तिथिनष्ट	सुमतिनाथ की धातु की		नेनलेखसंब्रह,
€ξ.	3305	icii ari ac	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	कारत्यमाय ज्याम <b>स्य,</b> मिनोतरा	्रगनलखसंब्रह, लेखांक ७३३.
EO.	940£	मार्गशीर्धमिन	वासुपुज्य की धातु की	शांतिनाथ जिनानग	नेनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
EG.	7,100	1 1111111111111111111111111111111111111	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	व्यवस्थान विभागम्,	मनपातुत्रातमालखसग्रह, माग १, लेखांक१०४८.
	9509	आषादवटि ९	शांतिनाथ की घातु	आदिनाथचैत्य, थराद	प्रतिमालेखसंब्रह,
ξζ.	,,,,,,	शुक्रवार	की प्रतिमा का लेख	ma: 11 m m (m) m (1) m	व्रातनालखसग्रह, लेखांक ४८.
	9490		शांतिनाथ की पंचतीर्थी	पार्थितन्त्र गच्छ	प्रतिष्ठालेखसंग्रह,
££.	,,,,,	सोमवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख		व्यापण्डालखसप्रह, लेखांक ४६२.
900.	95,90	माघसुदि ५	27	वाफणा सवाई राम	निलेखसंग्रह, भाग३.
100.	,,,,,,	Tina Gira X	ļ	क्र मंदिर, जैसलमेर	गनलखसंब्रह, भाग३, लेखांक २५४६.
	L		1	THE HALL SIGNAL	राजाक स्टर.

9590	फाल्युनवदि ३	निमनाथ की धात की	आदिनाथ देरासर.	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
	शुक्रवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	बडनगर	माग ३, लेखांक ५३८.
9499	आषाढ्वदि ६	पंचतीर्थी प्रतिमा पर		शत्रुं जयगिरिरा जदर्शन,
		उत्कीर्ण लेख	į	लेखांक ४४२.
9599	"	संभवनाथ की प्रतिमा	सपार्श्वनाथ जिनालय.	नैनलेखसंग्रह, भाग३,
		उत्कीर्ण लेख	जैसलमेर -	लेखांक २१८३.
9599	,,			नैनधातुप्रतिमालेख,
	1	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	नागपुर	लेखांक १३०.
9499	,,	,,		जैनलेखसंब्रह, भाग३,
	1			लेखांक २३३१.
900	17	आदिनाथ की धात की	बहत्खरतरगच्छ का	वहीं, भाग ३
		प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	उपाश्रय, जैसलमेर	लेखांक २४८०.
9599.	माधसूदि ५	","	पदमप्रभजिनालय, चर्डा	वर्टी, भाग २,
-	गुरुवार		वाली गली. लखनऊ	लेखांक १५५०.
9595	आषाढवदि १	शीतलनाथ की धात की	शांतिनाथ जिनालय	नैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
		प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	कडाकोटडी. खंभात	माग २, लेखांक ६०८.
9492	","	विमलनाथ की धात की	चिन्तामणि पार्श्वनाथ	<b>जैनधातुप्रतिमालेख</b>
-		प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जिनालय. पायधनी	नेखांक १३२
9492	,,	शांतिनाथ की पंचतीर्थी	धर्मनाथ जिनालय	प्रतिष्टालेखसंग्रह,
	1	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	मेडतासिट <u>ी</u>	लेखांक ४८३.
9695	फाल्गुनसुदि५	श्रेयांसनाथ की धात की	चिन्तामणि पार्श्वनाथ	<b>नैनघातुप्रतिमालेखसंग्रह</b>
_		प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जिनालय. खंभात	भाग २, लेखांक ५८६.
9593	फाल्गुन	अभिनन्दन स्वामी की	सपार्श्वनाथ का मंदिर	वीकानेर जैनलेखसंग्रह,
-	सुदिउँ२	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	नाहटों में. बीकानेर	लेखांक १७६२.
9595		वासपञ्च की धात की	आदिनाथ जिनालय	वहीं, लेखांक १६६१.
				100
	ľ		बीकानेर	
१५१२	"	आदिनाथ की घातु की	विमलनाथ जिनालय.	प्रतिष्टालेखसंग्रह,
		पंचतीर्थी प्रतिमा का	सवाई माधोपुर	लेखांक ४६६.
		लेख		
9595	"	अभिनन्दनस्वामी की	नवधरे का मंदिर,	जैनलेखसंग्रह, भाग१,
		धातु की प्रतिमा पर	देल्ली	लेखांक ४७८.
१५१२	तिथिनष्ट	विमलनाथ की धातु की	वीर जिनालय, पाटण	जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,
	ļ	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख		भाग १, लेखांक ३७६.
9५9३	ज्येष्ठवदि ११	धर्मनाथ की पाषाण की	मुनिसुव्रत जिनालय,	प्रतिष्ठालेखसंग्रह,
	गुरुवार	प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	मालपुरा	लेखांक ५०८.
95 33	ज्येष्ठसुदि११	मुनिसुव्रत की प्रतिमा	सुपार्श्वनाथ जिनालय,	जैनलेखसंग्रह, भाग३,
		पर उत्कीर्णलेख	जैसलमेर	लेखांक २१८५.
9493	"	कुन्थुनाथ की प्रतिमा	चन्द्रप्रभ जिनालय,	प्रतिष्टालेखसंग्रह,
		पर उत्कीर्ण लेख	केकड़ी	लेखांक ५१२.
		<del></del>	7.1	t
9493	1	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वहीं,	वहीं, भाग ३,
	9599 9599 9599 9599 9598 9598 9598 9598	शुक्रवार  १५११ आषाढ़वदि ६  १५११ "  १५११ "  १५११ "  १५११ "  १५१२ आषाढ़वदि १  १५१२ "  १५१२ "  १५१२ फाल्गुनसुदि५  १५१२ फाल्गुन सुदि१२  १५१२ फाल्गुन सुदि१२  १५१२ "  १५१२ "  १५१२ "  १५१२ "  १५१२ जेष्डवदि११  १५१३ जेष्डवदि११  १५१३ जेष्डवदि११  १५१३ जेष्डवदि११  १५१३ जेष्डवदि११  १५१३ जेष्डवदि११	शुक्रवार प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५११ '' संभवनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५११ '' संभवनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५११ '' शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५११ '' आदिनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ माघसुदि ५ गुरुवार  १५१२ आषड़बदि १ शीतलनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ '' बोमलनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ '' शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ '' शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ फाल्गुन सुदि५ श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ फाल्गुन आभनन्दन स्वामी की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ '' आदिनाथ की घातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ '' आदिनाथ की घातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख  १५१२ '' आदिनाथ की घातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख  १५१२ '' अभिनन्दनस्वामी की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१२ चेष्डवदि११ चम्नाथ की घातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१३ च्येष्डवदि११ धर्मनाथ की पाषाण की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५१३ च्येष्डवदि११ मुनिसुद्रत की प्रतिमा पर उत्कीर्णलेख  १५१३ '' खुन्शुनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्णलेख	शुक्रवार प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख चडनगर  १५११ आषाढ़विद ६ पंचतीशी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख  १५११ " संगवनाथ की प्रतिमा सुपार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर  श्रिश् " सांतिनाथ की धातु की नया जैनमंदिर, प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख आपश्य, जैसलमेर  १५११ " आदिनाथ की धातु की मृहत्खरतरगच्छ का प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख अपश्य, जैसलमेर  १५११ माधसुदि ५ " प्रमुम्प्रजिनालय, जूडीन लेख उपाश्य, जैसलमेर  १५१२ माधसुदि ५ " प्रमुम्प्रजिनालय, चूडीन लेख उपाश्य, जैसलमेर  १५१२ आपढ़विद १ शीतलनाथ की धातु की सांतिनाथ जिनालय, प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख जिनालय, पायधुर्मा, मुम्बई  १५१२ " शांतिनाथ की धातु की चन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख मेहतासिटी  १५१२ फाल्गुन सुदि५ श्रेयांसनाथ की धातु की चन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख मेहतासिटी  १५१२ फाल्गुन सुदि५ श्रेयांसनाथ की धातु की चन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख मेहतासिटी  १५१२ फाल्गुन सुदि५ श्रेयांसनाथ की धातु की चन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख महतासरी  १५१२ फाल्गुन वासुपुज्य की धातु की आदिनाथ का मंदिर सुदि१२ प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख महतो में, बीकानेर  १५१२ '' आदिनाथ की धातु की आदिनाथ जिनालय, पंचतीशीं प्रतिमा का सुवान स्वान

929.	953	आषाढ्सुदि२	कुन्थुनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वही,	वही, भाग, ३, लेखांक २१८७.
१२२.	<del>የ</del> ሂ የ <b>३</b>	"		जैनमंदिर, धनज बाजार, अमरावती	जैनधातुप्रतिमालेख लेखांक १४८.
१२३.	9593.		की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, बूंदी	प्रतिष्ठालेखसंग्रह, लेखांक ४१३.
૧૨૪.	9593		आदिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाई माधोपुर	वहीं, लेखांक ५७७.
૧૨૪.	953		पर उत्कीर्ण लेख	विमलनाथ जिनालय, जैसलमेर	जैनलेखसंग्रह, भाग३, लेखांक २४४२.
१२६.	9493		सुविधिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख		वहीं, भाग ३, लेखांक २१६०.
१२७.	9&	सुदि २	अजितनाथ की धातु की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय, नाहटों की गवाड़, बीकानेर	वीकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखांक १४४३.
9२८.			पर उत्कीर्ण लेख	श्री गंगागोल्डेन जुवर्ला म्युजियम, बीकानेर	वहीं, लेखांक २१६३.
9 <b>२</b> ६.	ንሂንሂ		का लेख	चिन्तामणि जी का मंदिर, बीकानेर	वहीं, लेखांक ६८४.
930.	<b>9</b> 595		पर उत्कीर्ण लेख	माथोलाल दुगड़का घर देरासर, बड़तल्ला, कलकत्ता	जैनलेखसंग्रह, भाग१, लेखांक १२६.
939.	<b>9</b> ሂ9ሂ		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	कल्याण पार्श्वनाथ देरासर, वीसनगर	नैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह, माग [्] २, लेखांक ५२८.

## Catalogues of Jaina Manuscripts

Dr. Ashok Kumar Singh*

Indian collection of manuscripts outnumbered those in any other country in the world. The Jaina tradition also significantly enriched this treasure. The Jaina manuscripts available in various languages, format and scripts such as Devanagari, Gujrati, Kannada, Tamil, Telugu etc., applied different materials such as bitch bark, palm leaf, paper, leather, copper-plate, textile, stone, clay-tablet, wooden board, etc. The growth and development of human knowledge including socio-cultural history, language and literature, science and technology, art and crafts, in the Indian sub-continent over the centuries, is reflected in these manuscripts.

Indian manuscripts in general and Jaina manuscripts in particular are stored in Indian libraries, collections of academic institutions, monasteries, temples, etc. as well as in other countries also. Besides, fairly large number of manuscripts is stored in the private collections. The several efforts, by Indian as well as foreign scholars, made from the middle of the 19th century onwards, fructified in systematically cataloguing only a small percentage of the total manuscripts. A large part left uncatalogued; some are still unrecorded. The catalogues prepared, also, are mostly hand-written, giving some basic data: author, title, language, script, etc. The several manuscript collections: private as well as institutional, remained unattended for years, not recorded or listed in any form.

Invariably, all the Jaina catalogues provide only the bare minimum bibliographic data, author, title, date and extent, but with regard to even such details no uniformity or standard practice is followed by compilers. On the basis of the information contained therein these available catalogues may be grouped into following categories:

^{*}Senior Lecturer, Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi.

- Manuscript search Report- giving general account of the availability of mss. in particular area with list of titles acquired.
- 1. Bare list containing authors and title; sometimes only the titles are listed.
- 2. Alphabetical catalogue-listed by author or titlež contains author, title, commentator, script, date, extent, etc.; sometimes only the short title and corresponding accession number.
- 3. Catalogue in tabular form classified arrangement; data, information, are tabulated under separate columns / heads.
- 4. Descriptive catalogue in tabular form this type of catalogue contains number, subject, accession or collection number, title, author, commentator, script, scribe, language, size, and number of folios, leaves, lines per page and number of letters per line, extent, condition, date, additional particulars, beginning and ending lines, colophons of select manuscripts only.
- 5. Descriptive catalogue- provides full physical description (as listed in 5 above); post colophons select portions from the text, notes on author and work.
- 6. General register of works (on the basis of the catalogues of manuscripts) contains short information on author and title with source of availability.

In the above format, the entries have been recorded title- wise as well as subject-wise. The lack of uniform practice and consistency in the compilation of catalogues of manuscripts prepared is due to the different approaches adopted by the compilers.

Indian manuscript catalogues are, generally, the result of teamwork efforts under the supervision of one or two principal editors. But their counter parts in European countries are the result of personal efforts by scholars. The practice adopted in bringing out the manuscript catalogues is generally the same. Institutions,

etc. usually prepare first a hand list of a collection and then publish the same as catalogue at a later date. Apart from institutional and personal catalogues there are several catalogues published covering a region, state or country.

The catalogues are also prepared language wise e.g. catalogue of Sanskrit, Prakrit, Gujrati, Kannada etc. All the catalogues, containing information on the Jaina works, may not be termed as Jaina catalogues. Some catalogues devote a volume or two to the Jaina manuscripts while others include the Jaina works like others in alphabetical order. All the catalogues, herein, have been arranged under one alphabetical order by names of their locations, followed by the names of the institution / collection, where the manuscripts were located.

Klaus Ludwig Janet in his An Annotated Bibliography of the Catalogues of Indian Manuscripts, Part 1 (1965) presented a detailed study of the development of manuscript cataloguing both in India and Europe, beginning from Albrecht Weber's Catalogue of Sanskrit manuscripts in Berlin (1853) followed by Theodore Aufrecht's Catalogue of the Bodleian Library's Sanskrit Manuscripts (1859). Janet also followed this geographical principle for arranging the catalogues in his bibliography. Coming to the beginning of the compilation of the list or catalogue of Jaina manuscripts, Bṛhaṭṭippaṇikā, dated AD 1383, providing the short descriptions of about 600 Jaina manuscripts, may be treated as the earliest catalogue in India The most comprehensive and exhaustive work, in this regard, Bibliographic Survey of Indian Manuscript Catalogues, is by Subhasha C. Bisvasa (Delhi 1998). He also mentioned the number of manuscripts; each catalogue deals with, sometimes recording the number even language-wise. Bisvasa followed Janet's pattern. The author of this article is benefited significantly by the hard work put in by Mr. Bisvasa, in bringing out his work. In conformity with his pattern in deciding the place names the same form has been adopted as appeared on the title pages of the catalogues or documents. In case, more than one

institutions are located at one place the names of the institutions are arranged alphabetically under the place name. Again where there are several catalogues published by one institution, the catalogues are first classified language-wise, then arranged chronologically as per the dates of their publication. The catalogues published may cover a region, state or country; in all such cases, entries have been arranged under the country or region. Works like general bibliographies, reports of surveys of manuscripts or catalogue of collections prepared by single person but not related to any specific place or institution, have been arranged by personal names of the author/compiler of the catalogue. Where a catalogue is not related to any institution or place and is prepared by several persons or is an anonymous work, in such cases, they have been recorded under the title of the work.

In descriptive part of the entries English words / names have been used as a general rule substituting Indian Language terms, e. g. Editor for Sampādaka, compiler for Sangrāhaka etc. Wherever the information is available, the original owner/location/institution or collection as well as the present location etc. have been mentioned. Here follows the account of published catalogues:

- Bṛhaṭṭippaṇikānāmaprācīnajainagranthasūcī, classified list of 653 mss. with date and number of folios. <u>Pub.</u> In: Jaina Sāhitya Sanśodhaka Pariśiṣṭa 1 (2), 1-16.
- 2. London, Royal Asiatic Society, Works of Sir William Jones with the life of the author (13 vols.) by Lord Teighmouth, of Sanskrit and other Oriental manuscripts, presented to the Royal Society by Sir William Jones and Lady Jones. The catalogue lists Sanskrit, Prakrit and other manuscripts. These mss. were transferred to the India Office library in 1876. Pub. London: 1807.
- 3. [London. British Library. Oriental and India Office Collections.] Jaina manuscripts: Temporary List, by George E. Marrison 1969, is a hand list, containing information of about 250 works.

- 4. A Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the British Museum Vol. II, comp. by J.P. Losty, this catalogue contains the description of 763 Sanskrit and Prakrit mss. Bendall's Catalogue (1902) lists mss. acquired upto 1898. Bendall omitted Jaina mss. acquired before 1898. This vol. contains mss. acquired upto 1871. It includes (I) Jaina mss. acquired in 1879 from Ratnavijayasuri of Ahmedabad. (II) Jaina mss. acquired by H. Jacobi in Rajasthan in 1873-1874 and purchased by the British Museum in 1897. (III) the Nevil collection of mss. from Srilanka, acquired in 1904. Pub. British Library, P. VI, 70,
- 5. [Oxford. Indian Institute] Catalogue of the Sanskrit and Prakrit mss. in the Indian Institute Library, by Arthur Barriedale Keith, description of 162 Sanskrit and Prakrit mss. with extracts, contents, and notes. Most of the collection was presented by Monier Williams and a few of these mss. were purchased in 1886. The information is arranged subject-wise. Pub. Clarendon Press, Oxford 1903. P.99.
- [London. British India Office Library & Records] 6. Brahmanical and Jaina Manuscripts by Arthur Berriedale Keith with a supplement on Buddhist manuscripts by F. W. Thomas, this catalogue describes the 8220 Sanskrit and Prakrit mss. with extracts, notes and index. Published in two vols., its second volume deals with Brahmanical and Jaina manuscripts. This collection has now become the part of Oriental & India Office Collections, British Library, London. Pub. Vol. II. Clarendon Press, Oxford 1935, Pt. I: Vedic Literature: Sanskrit and Prakrit literature; A. Scientific and Technical Literature, B. Poetical Literature P. X, 920 mss. No. 4204-6627. Pt. II: B. Poetical Literature (continued) C. Jaina Literature, D. Buddhist Literature. It contains the list of following collections: 1. Aufrecht Collection, 2. Buhler Collection, 3. Burnell Collection, 4. Hodgson Collection, 5. Mackenzie Collection, 6. Tagore Collection, Wilkins (residual) mss. (Central collection, 3978) and index to vol. I & II; Addenda and Corrigenda to the index.

- 7. [London. Royal Asiatic Society] Catalogue of the Tod Collection of Indian Manuscripts in the possession of the Royal Asiatic Society by L.D. Barnett, a catalogue with the short description of 171 Sanskrit, Prakrit Hindi and Gujrati manuscripts, collected by Tod during the years 1799- 1823. Pub. In: Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 1940. Pp.129-178,
- 8. London. School of Oriental and African Studies, University of London! A hand list of manuscripts in South Asian Languages in the Library, this hand list describes among other, Gujrati, Hindi, Prakrit, Rajasthani and Sanskrit manuscripts. Unpub. / by R.C. Dogra. London: SOAS, 1978. P.47.
- 9. [London. Welcome Institute for the History of Medicine.]

  A hand list of the Sanskrit and Prakrit manuscripts in the library of the Welcome Institute for the History of medicine by D. Wujastyk, a hand list of 978 Sanskrit, Prakrit, Hindi etc. mss. arranged by subject is prepared by D. Wujastyk. Proposed to be published in 6 volumes, its only first volume is brought out its five volumes are yet to be published. Pub. The Institute, London 1985, Vol. I- P. Xiii, 317.
- 10. [London. Welcome Institute for the History of Medicine] The South Asian_Collections of the Welcome Institute for the History of Medicine, this catalogue provides a description of the provenance and character of the Welcome's Indic collections in general; highlights the more important mss. of the collection. It also indicates the language -wise break-up of mss.: 6000 Sanskrit Prakrit, 150 Pali, 4000 Sinhalese etc. Unpub. London: the Institute, 1984, P.130.
- 11. [Berlin. Koniglichen Bibliothek zu Berlin] Verzeichnis der Sanskrit Handschriften by Von A. Weber contains description of 2304 Sanskrit, Prakrit and some other manuscripts in other.

- Indian languages with extracts, notes etc. <u>Pub.</u> Berlin: Verlag der Nicolaiisachen Buchhandul ung 1853, 2 Vols. Bhand 1 and 2, 1-3.
- 12. [Berlin. Koniglichen Bibliothek zu Berlin] Die Jaina Handschriften der K. Bibliothek zu Berlin/Von. Jon. Klatt, contains title list of 300 Jaina manuscripts collected by George Buhler during 1868 1878, the titles arranged subject-wise. Pub. In: Zeitschrift der Deutsche Morgenlandischen Gesellschaft, 33, 1879, p. 478-483.
- 13. [Jacobi Collection] Liste der Indischen Handschriften in Besitze des Hermann Jacobi in Munster, a classified list of 146 Sanskrit, Prakrit and few Hindi and Gujrati mss, collected by H. Jacobi from Rajputana, during 1873-74, arranged by subject. Pub. In: Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft, 33, 1879. Pp. 693-697.
- 14. [Berlin. Preussischen Staatsbibliothek] Die Jaina Handschriften der Preussischen Staatsbibliothek. Neuer wer bungen seit 1891, contains description of 770 Jaina manuscripts comprising of 1127 works in Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa, Hindi and Gujrati works. Pub. / Unter redacti oneller mitrabeit von Gunther Weibgen: beschrieben von, Walter Scubring & Leipzig: Otto Harrasso witz, 1944, P. xiii, 647.
- 15. [Benares Sanskrit College], Rājakīya Varanasi Vidyāmandira Sarasvati Bhavanavartti Sūcīpatram, this catalogue gives short description in tabular form of about 3,000 Sanskrit mss. arranged subject- wise. The catalogue has no index. Majority of the entries has only title and author information. Pub. In: The Pandit, a monthly Journal of the College. Vol. X, June 1875.
- 16. [Benares. Sanskrit College] List of Sanskrit, Jaina and Hindi Manuscripts purchased by Order of the Government and deposited in the Sanskrit College, Benares during the years

1897-1918, short description of 2829 Sanskrit, Prakrit and Hindi manuscripts, in tabular form. The catalogue is arranged subject -wise. Each volume also indicates woks that are not mentioned in Aufrecht's Catalogus Catalog orum. Out of the 22 volumes, 1-5 mentions Jaina mss. <u>Pub.</u> Government Press, Allahabad 1902-1919. The volumes 1-5 are published during the years 1897, 1898, 1899, 1900 and 1901, respectively.

17. Poona. Deccan College (Buhler's manuscripts reports)(I) As Collection of 1866-1867, report on the results of George Buhler's tour in the southern Maratha country and Kanara, made in November, December 1866 and January 1867 for search of Sanskrit mss. for the govt. of Bombay. It contains classified notes on about 200 works acquired. Pub. P.315-32. (II) As Collection of 1871-1872 by George Buhler is report on the results of his tour in the Gujrat country made during 1871 -1872 for search of Sanskrit mss. for the govt. of Bombay. It contains tabular form of 421 Sanskrit mss. Pub. Surat: 1872, P.11. (III) Report on Sanskrit mss.: 1872-1873/ by George Buhler, report on the results of his tour in the Gujrat country made during 1872-1873 for search of Sanskrit mss. for the govt. of Bombay. Having short description in tabular form arranged subject- wise, it includes information about 123 Jaina Manuscripts. Pub. Indu Prakashan Press, Bombay 1874, P. 7, 17. (IV) Report on Sanskrit mss. 1872-1873/ by George Buhler, report of the search in Rajputana, about 54 mss. purchased for the Govt. of Bombay. Having short description in tabular form arranged subject wise. Pub. Indu Prakashan Press, Bombay 1875, P21.(V) Report on Sanskrit mss.: 1875-1876 / by George Buhler, detailed report on the results of his tour in the search of Sanskrit manuscripts made in Kashmir, Rajputana and Central India made during 1875- 1876. Pub. Society's Library, Bombay; Turner & Co., London 1877 P. clxxi, 90. / Also published In: Journal of the Bombay Branch of Asiatic Society.

18. [Poona. Bhandarkar Oriental Research Institute] the manuscript Catalogue of Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona published in the 19 volumes contains description of Jaina manuscripts in its 17th, 18th and 19th volumes. The Catalogue as a whole gives the description of about 10,000 Sanskrit, Prakrit and some Gujrati mss. with extracts, notes with references. Arranged subject-wise, each volume contains author, work's indices and corresponding tables of mss. The collection was transferred from the Deccan College to Bhandarkar Oriental Research Institute in September 1918. This catalogue prepared under the title of the government collections of manuscripts deposited at the Bhandarkar Oriental Research Institute. Here are the details of the volumes pertaining to the Jaina manuscripts: Vol. 17. Jaina Literature and Philosophy:- Pt. I: (a) Agamika Literature [Anga, Upānga and Prakīrņakas] comp. By Hiralal Rasikadas Kapadia. 1935. P. xxi, 390 mss. Nos.1- 433, Vol. 17). Pt. II (a): Agamika Literature [Chedasūtras & Cūlikāsūtras], comp. by Hiralal Rasikadas Kapadia, 1936, P. 363, 24 , mss. Nos. 434-643; Addenda to Parts I& II on P. 337-363; Appendix: I1 Jaina and Non Jaina characters, 2. Typical symbols and Characters from Jaina Mss 3& 4. Pt. III (a): Agamika Literature [Mūlasūtras]/ comp. By H. R. Kapadia, 1940.P. xxxii, 530. Mss. Nos. 644-1160. Pt. IV (a): Agamika Literature (a) miscellaneous (b) ritualistic works and (c) Supplement/comp. by H. R. Kapadia, 1948. P. xx, 280. mss. Nos. 1161-1463. Addenda on P. 273-276Vol. 17). Pt. V: (Agamika Literature) / comp. by H. R. Kapadia, 1954.P. xxii, 298, this part V is an appendix to Vol. XVII, Pt. It contains author, work and language appendices. I- IV. The Vol. 17 contains 291 Prakrit, 353 Sanskrit and 103 Gujrati works. Vol. 18. Jaina Literature and Philosophy, Pt. I: Logic, Metaphysics etc. [Dārśanika Literature] /comp. by H. R. Kapadia, 1952.P. xx, xxvi, 498, mss. Nos. 1-305. Addenda on P. 485-493, Vol.19. Jaina Literature and Philosophy,

- [Section I]: Hymnology: Pt. I. Śvetambara works /comp. by H. R. Kapadia, 1957.P.xxv, 367, mss. Nos. 1-354; Addenda on P. 363-364Vol. 19). Pt. II Śvetambara and Digambara works alongwith appendices 1-10 /comp. by H. R. Kapadia, 1962 .P. 17.xvii, 454, mss. Nos. 355-317; Index. [Section II]: Narratives: Pt. I. Śvetambara works /comp. by H. R. Kapadia, 1967. P12.xx, 444, mss. Nos. 1-321. Pt. II Śvetambara works /comp. by H. R. Kapadia, 1977 .P. xv, 424, mss. Nos. 322-326.
- 19. [Strassburg] A list of the Strasbourg Collection of Digambara Jaina Manuscripts by Ernest Leumann, a preliminary alphabetical list with short descriptions of about 225 Sanskrit, Prakrit, and a few Gujrati and Hindi mss. preserved in the libraries of Berlin, Oxford, Strasbourg and Pune. <u>Pub.</u> In: Wiener Zeitschrift fur die Kunde Des Morgenlandes, 11. 1887, p. 297-312.
- 20. [Strassburg. Bibliotheque Publiques de France,] Catalogue general des manuscripts des Bibliotheque publiques de France, Strassburg, description of Sanskrit and Prakrit manuscripts, now preserved in the Bibliotheque Universitaire de Paris. Pub. Par Le D. Ernest Wicker sheimer. Libraries Plon, Paris [1923, v. Departments Tome xlvii.
- 21. [Strassburg] Die Strassburger Svetambarahandscriften, by Von Ernest Leumann, a preliminary alphabetical list with short descriptions of about 99 Sanskrit, Prakrit and a few Gujrati and Hindi mss., preserved in the libraries of Berlin, Oxford, Strassburg and Pune. <u>Pub.</u> In: Ubersicht uber die Avasyaka-Literattur/von Ernest Leumann. Aus dem Nachlass hrsg. von Walther Schubring. Hamburg: Friederchsen, de Gruyter, 1934. _ c, Iv, 56p. (Alt- Und New Indisch Studien; 4).
- 22. [Strassburg. Bibliotheque Nazionale et Universitaire de Strassburg.] Catalogue of the Jaina Manuscripts at Strassburg, by Candrabhal Tripathi, E. J. Bill has the

- description of 334 Sanskrit, Prakrit manuscripts with extracts, copious notes. References of the mss. availability in other collections also indicated. Arranged by subject, its introduction throws light on manuscriptology. The catalogue has 10 appendices including author, works, and place etc. indices. <u>Pub.</u> Leiden 1975, P. xviii, 426, 7 plates, 1 map, frontispiece.
- 23. [Tirumalai. Jaina Bhandara] List of Palm-leaf manuscripts in possession of the Jainas at Tirumalai. Pub. In: Madras Epigraphy Report, 1887 Appendix 3,7.
- 24. [<u>Leumann Collection,</u>] Lists Von Trans kribierten Abschriften und Aus zugen vorwiegend aus der Jaina Literatur by E. Leumann, short notices of 90 mss. (68 Jaina), mostly transcribed by E. Leumann. <u>Pub.</u> In: Zeitschriften der Deutschen Morgen landischen Gesellschaft, 1891, P. 454-466.
- Manuscripts, by F. L. Pulle, Biblotheca Nazionale Centrale List of 65 mss. related to canonical literature. Among the Florentine Indian mss. purchased by Angelo de Gubernatis at Bombay and Surat during his travels in 1885 -86, for the Biblotheca Nazionale Centrale, about 350 belong to the literature of the Jainas. This collection is small but very valuable. Pub. As the prefatory remarks by Leumann. In: Transactions of the Ninth International Congress of Orientalists held in London, 1892.
  - 26. Les manuscripts de 1, extra- Siddhta (Gains) de la Bibliotheque Nazionale Centrale De Florence, par F.L. Pulle, this catalogue contains title list of 176 Sanskrit and Prakrit mss. partly listed among the collection, acquired by Angelo de Gubernatis. Pub. In: Actes du dixieme Congress Internationale des Orientalists, Session de Geneve 1894. Leiden: Brill, 1895.
  - 27. [Firenze. Biblotheca Nazionale Centrale] Les manuscripts de l'xtra -Siddhānta (Gains) de la Bibliotheque Nationale

- Centarle de Florence/ par F. L. Pulle. Title list of 176 manuscripts of Sanskrit and Prakrit. <u>Pub</u> In: Actes du Dixieme Congress International des Orienatalists, Session de Geneve 1894. Troisieme Partie, section 1 Inde .P. 15-24, Leiden: Brill, 1895.
- 28. [Paris, Guerinot, A.] Essai Bibliographica Jaina: Reportoire analytique et methodique des travaux relatifs au Jainism avec planches hors texte/ par A. Guerinot, in addition to printed materials also describes listed mss. on Jainism (p. 43- 109). Pub. Ernest Leroux, Editeur, Paris 1906, P.xxxvii, 568.
- 29. [Calcutta Sanskrit College] A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Library of Calcutta Sanskrit College, by Hrishikesh Sastri and Siva Candra Gui, the 3rd part of the 10th volume of this catalogue of Sanskrit College, Calcutta, contains description of Jaina manuscripts. The catalogue, published in the 10 volumes, describes the 3600 Sanskrit mss. with extracts and Notes. The catalogue is arranged subject-wise. Each volume contains separate index. Pub. Baptist Mission Press; Banerjee Press, Calcutta 1895-1917. Vol. 10, Part III, Jaina Mss. / by Hrishikesh Sastri and Nilamani Cakravarti, P. 274, mss. 135.
- 30. [Calcutta Asiatic Society of Bengal], A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Government Collection under the Care of Asiatic Society of Bengal, by Haraprasad Sastri, XIII Vol.). the present catalogue contains the description of about 9, 225 mss. in Sanskrit and few Prakrit mss. alongwith some in the vernacular languages. The catalogue is published in 14 volumes. The 13th volume of this catalogue is devoted to the Jaina manuscripts. Pub. Jaina Manuscripts (Sanskrit & Prakrit) / by Ajita Ranjan Bhattacarya, Fasc. I, 1958, P. viii, 276, Fasc. II, 1966, P. 277-291. mss. No. 1-252.
- 31. [Bombay. Jaina Śvetambara Conference] Śrī Jaina Granthāvalī, short description in tabular form of about 3200 Jaina mss., available in the Jaina Bhandaras of Paţan,

- Jaisalmer, Limbdi, Khambat, Bhavnagar, Ahmedabad, Kodaya, Bombay, Radhanapur, Jamnagar, Surat, Deccan College, Pune and mss. listed in Peter Peterson's and Royal Asiatic Society's Reports. <u>Pub</u>. Jaina Śvetambara Conference Bombay, 1907 pp. 1-246.
- 32. [Bombay. Ailaka Pannalal Digambara Jaina Sarasvati Bhavana] Vārṣika Report aur Granthasūci: Ailaka Pannalal Digambara Jaina Sarasvati Bhavana Jhalarapatana, this catalogue contains the title list of the 162 Sanskrit, Prakrit and Hindi manuscripts. Pub. Thakarsidass Jain, Bombay 1924-1931 AD. 5 Reports.
- 33. [Bombay. Branch of the Royal Asiatic Society Bhavana] A Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Library of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, comp. by Hari Damodar Velankar contains description of 2073 Sanskrit, Prakrit, Gujrati, Marathi and Hindi manuscripts, with notes on authors and works. Sanskrit and Prakrit works listed with notes and extracts while only notes are provided for Gujrati, Hindi and Marathi manuscripts. Of the 4 volumes, 3rd is devoted to the Jaina Literature. Pub. In: Young, Bombay 1925-1930, P. 381-468.
- 34. [Bombay. Bharatiya Vidya Bhavana] Descriptive Catalogue of manuscripts in the Bharatiya Vidya Bhavana Library, comp. by M. B. Warnekar, description in tabular form of 1377 paper and palm leaf mss. in Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Gujrati, Marathi, Rajasthani and Hindi manuscripts. The catalogue also contains extracts from 140 select mss. Pub. Bharatiya Vidya Bhavana, Bombay 1985, P. cvii, 526.
- 35. [Madras. Adyar Library and Research Centre] A preliminary list of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Adyar Library (Theosophical Society) by the Pandits of the Library, a classified list of 11842 mss. comprising 5270 Sanskrit and Prakrit works. Pub. Oriental Publishing Co. Adyar Library S. No.1, Madras 1910, P. viii, 279.

- 36. A Catalogue of Sanskrit Manuscripts in Adyar Library by scholars of the library, description in tabular form of 17,519 mss. comprising 7835 works. Published in two parts, its second part contains the information regarding the Jaina manuscripts.

  Pub. Adyar Library, Madras 1926-1928. 2 pts. (Adyar Library Series No.11) Part II. 1928, P. xv, 242, xii.
- 37. [Madras. Govt. Oriental Manuscripts Library] An alphabetical index of Sanskrit manuscripts in the Government Oriental Manuscripts Library, Madras, title index of 31,412 Sanskrit mss. with short description in tabular form. Pub. Prepared under the order of the Government of Madras, 1938-1942. Vol. I. A to Ma/by S. Kuppusvami Sastri and P.P. Subrahmanya Sastri 1938, P.11, 609, mss.No.1-16123.Vol. II. Ya to Ha/by P.P. Subrahmanya Sastri 1940, P.16, 612-944, mss.No.16124-25252, Vol. III. (Supplementary index to title, [A to Ha]/by P.P. Subrahmanya Sastri 1942, P. ix 290, mss. No. 25253-31412.
- 38. [Madras. Govt. Oriental Manuscripts Library] As Descriptive Catalogue of Kanarese manuscripts in the Government Oriental Manuscripts Library the Vol. III of the 7 vols. Pub. Vol. III. [Jaina and Vaiṣṇava Philosophy] by S. Kuppusvami Sastri and P.P. Subrahmanya Sastri, 1939,P.ii, xviii, 508-794, mss. Nos. 318-476.
- 39. [Madras. Govt. Oriental Manuscripts Library] Author index of Sanskrit manuscripts in the Government oriental Manuscripts Library, Madras/ by P.P. Subrahmanya Sastrian alphabetical index of the authors, it also contains an informative note on the origin and development of the library. Pub. [1940, P. x, 127.
- **40.** [Jaisalmer. Jaina Bhandaras] Jaisalmer Jaina Bhandāgārīya Granthānām Sūcīpatram, comp. by C. D. Dalal; ed. with introduction, indices and notes on unpublished works etc. by Lalcandra Bhagavandas Gandhi Central Library, Gaekwad's Oriental Series No. 21, Baroda 1923, p.2, 3, 70, 101.

- 41. [Central Provinces. Hiralal] Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Central Provinces Berar, by Hiralal, short description of about 8185 Sanskrit and Prakrit mss. The short introduction of the catalogue contains a critical study of the Karanza collection. Of the two parts, the second is devoted to the Jainism. Pub. Govt. Press, Nagaur 1926, p.2, 5, LV, 808.
- 42. [Guirat Jaina Bhandaras] Śrī Jaina Sāhitya Pradarśana: Śrī Praśasti Saṅgraha, ed. by Amrit lal Maganlal Shah, this catalogue contains only Praśastis (colophons) and source of the mss., 1469 in number (163 palm-leaf and 1276-paper mss.) of Sanskrit and Prakrit. These are selected from several Jaina Bhandaras of Guirat and displayed in an exhibition, held on 16, January 1931 at Ahmedabad. Puh. Sri Desavirati Dharmaradhaka Samaj, Ahmedabad, 1931, P. 28, 119, 18, 336, 56.
- 43. [Gujrat. Jaina Bhandaras] Treasures of Jaina Bhandaras, ed. by U. P. Shah, the present catalogue describes about 725 select Jaina illuminated mss. and art objects from several collections of Gujrat displayed at the L. D. Institute of Indology, Ahmedabad during November 1975. <u>Pub.</u>, L. D. Institute of Indology, (Lalbhai Dalpatbhai Series No. 69) Ahmedabad 1978, P. 9, 60,100, 16, 82 Plates.
- 44. [Jhalarapatan. Ailaka Pannalal Digambara Jaina Sarasvati Bhavana] Catalogue of Sanskrit Manuscripts and other books in Śrī Ailaka Pannalal Digambara Jaina Sarasvati Bhavana, Jhalarapatan, the catalogue of this collection describes the 1650 Sanskrit, Prakrit, Hindi and a few Gujrati and Marathi mss. The manuscripts are arranged according to that of Śvetambara, Digambara and Non- Jaina groups. Pub. 1933, P. 160.
- 45. [Ujjain. Oriental Manuscripts Library] Catalogue of Oriental Manuscripts (Collected upto March 1933) short

description in tabular form of 4897 Sanskrit, Prakrit, Hindi, Marathi etc. manuscripts, arranged subject -wise. The library was renamed as Scindia Oriental Institute, Vikram University. The title and author are to be arranged both in Devanagari and Roman scripts. *Pub*. Oriental Manuscripts Library, Ujjain. as Pt. One and those from April 1935 to the end of March 1937 as Pt. Two.

- 46. [Patan. Jaina Bhandaras] A Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Jaina Bhandaras at Patan, contains description of 654 Sanskrit, Prakrit and few Gujrati manuscripts with extracts and notes. A report on the search for manuscripts in the Jaina Bhandars at Patan, p.33-72. Appendix: Vādipārśvanātha - Vidhicaitya Praśasti- Śilālekha. Indices. Most of the mss. are housed in Hemacandracarya Jaina Jñānamandira. Pub. comp. from the notes of C.D. Dalal; with introduction, indices and appendices by Lalcandra Bhagavanadas Gandhi, Oriental Institute, Baroda, (Gaekwad's Oriental Series; No. 76) 1937. Vol.1. Palm Leaf mss. P. 72, 498, 10. The details of the manuscripts & collections, contained in this volume are: 1, Sanghavi Pada Bhandara (mss. No.1-413; P. 1-258). 2. Khetarwasi Bhandara (mss. No.1-76; P. 259-309). 3. Sangha Bhandara (mss. No.1-19; P. 310-396). 4. Tapāgaccha Bhandara (mss. No.1-4; P. 397-406). 5. Bhandara of Mahalaxmi Pada (mss. No.1-7; P. 407-410) 6. Pārśvanātha Bhandara (mss. No.1-5; P. 411-412). 7. Modi Bhandara (mss. No.1-2; P. 413-414). 8. Adivasi Pada Bhandara (mss. No.1-2; P. 415.
- 47. [Patan. Hemacandracarya Jaina Jñānamandira] Pāṭan-Śri Hemacandracarya Jaina Jñānamandirasthita Jaina Bhandāronuṁ Sūcīpatra comp. by Muni Puṇyavijaya, short description in tabular form of 14,789 Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa, Gujrati and Hindi mss., arranged by the order of Bhandaras. C.D. Dalal catalogued palm- leaves of these Bhandaras. The complete catalogue of all these manuscripts is published by Shardaben Chimanbhai Educational Research

Centre, Ahmedabad, See Next. Pub. Hemacandracarya Jaina Jñānamandira Patan 1972. Vol. 1, [Paper Mss.], P. 11,631. the details of the nos, of mss, and their collections are as follows: 1. Śrī Sangha Jaina Jñänabhandara: mss. nos. 1163-3508, 2. Limbadipāda Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 3509-4014, P. 164-189, 3. Śubhavīra Jaina Jñānabhandara; mss. nos. 4015-6525; P.190-293. 4. Vādipārśvanātha Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 6526-7332, P. 294-328. 5. Sāgaragaccha Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 7333-9985, P. 329-435, 6. Modi Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 9986- 10308, P. 436-448. 7. Leharubhai Vakil Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 10309-10830, P. 449-469, 8. Pravartaka Kantivijaya Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 10,831-12843, P. 470-566. 9. Yatiśrī Himmatavijaya Jaina Jñānabhandara: mss. Nos. 12844-12915 P. 557-560. 10. Śrīsangha Jaina Jñānabhandara (Kacchadeśamomthi Kharidelā Grantho): mss. nos. 12916-13322, P.561-575. 11. Adivasi Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 13323- 13346 P. 576-580. 12. Śrī Māṇikyasūri Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 13437-13503, P.581-583. 13. Kharatarācārya Buddhicandra Jaina Jñānabhandara: mss. nos. 13504-14789; P. 584-631.

48. [Patan. Jaina Bhandara.] Catalogue of Manuscripts of Patan Jaina Bhandara, comp. by Muni Punyavijaya; assisted by Muni Dhurandharavijaya, contains description in tabular form of 23241 Paper mss. and 1489 Palm-leaf mss., preserved in all the 19 Jaina Bhandars of Patan. In addition. Pt. IV also lists 290 brittle palm leaf mss. of Sanghavina Padano Bhandara (now merged with the Hemacandrācārya Jaina Jñānamandira in 1976. Pt. One includes only 14789 paper mss., catalogued by Muni Punyavijaya. It is remarkable that at present except the two Bhandaras: (1) Bhabhana Padano Bhandara and (2) Khetarvasi Padano Bhandara, all the 17 Bhandaras have been merged into Hemacandrācārya Jaina Jñānamandira. Pub. Ed. Prof. Jitendra B. Shah, Shardaben Chimanbhai Educational Research Centre, Ahmedabad 1991, 4 Parts in 3 Vols. (Śrī Śvetambara

Murtipujaka Jaina Boarding Ahmedabad Series No 1-3.): [Part I-II] detailed catalogue of 20,035 paper mss. preserved in the Hemacandrācārya Jaina Jñānamandira, [Part III], Alphabetical Index of all the 20, 035 paper mss., preserved in the Hemacandrācārya Jaina Jñānamandira, p. 547. [Part IV] detailed catalogue of 3206 paper mss. preserved in the Bhabhapada Bhandara at Patan; Catalogue of the Palm-leaf mss. of Sanghavipada, Catalogue of palm leaf mss. of the Bhandara of Khetarvasi Pada; Catalogue of palm leaf mss. of Sanghabhandara etc. with alphabetical index, P. 20, 304.

- 49. [Surat Jaina Bhandaras] Sūryapura Aneka Jaina Pustaka Bhandāgāra Darśikā Sūcī, comp. Kesaricanda Hiracanda Jhaveri, Moticanda Magnabhai Cokasi, an alphabetical list of over 13,000 Jaina manuscripts in Sanskrit, Hindi and Gujrati, preserved in 11 different Bhandars of Surat. The introduction highlights the genesis of the following examined Jaina Bhandars of Surat: 1. Śrī Jaina Anand Pustakalaya, Gopipura, Surat, 31,00 mss. 2. Śrī Jinadattasūri Jñānabhandara, Gopipura, 1029 mss. 3. Śrī Mohanlal Jñānabhandara, (Śitalvadi Upasraya). 2704, mss. 4. Śrī Hukumamuni Jñānabhandara, Gopipura, 711 mss. 5. Seth Nemacanda Melapcandani Vadinā Upasrayano Bhandara Gopipura, 891 mss. 6. Seth Devacanda Lalbhai Jaina Library (Jaina Pustakoddharano Sangraha) Gopipura. 366 mss, 7. Śrī Dharmanathii Mandira Jñānabhandara,( Devasura Gaccha) Gopipura, 1047 mss. 8. Śrī Ādināthaji Mandira Jñānabhandara, (Ansura Gaccha) Gopipura, 1612 mss. 9. Śrī Cintāmani. Pārśvanāthaji Mandira Jñānabhandara, Shahpura, 170 mss. 10. Śrī Simandhara Svāmī Mandira Jñānabhandara, Vedacauta. 780 mss. 11. Śrī Jaina Upasraya Bhandara, Vedacauta. 338 mss. 12. Śrī Vidyāśālā Bhandara, 925 mss. Pub. Jaina Sāhitya Fund, Jaina Sāhitya Series No. 2, Surat, 1938, P. 10, 107.
- 50. [United States of America] Census of Indic Manuscripts in the United States and Canada, comp. by H.I. Poleman, short notices, arranged by language and subject of 7273 Indian

- manuscripts in Sanskrit and Modern Indian languages, in addition to Pali, Prakrit etc. located in 69 institutions and private collections. *Pub*, American Oriental Society, S.No.12 New Haven 1938, P.xxix, 542.
- 51. [Washington, D.C. U.S. Library] comp. by Horace I. Pollen, alphabetical list of Indian manuscripts and paintings, with description, contains the information regarding the 30 Prakrit manuscripts. The list includes the collection, selected from the library of congress and from several public and private collections in the United States. Pub. United States Govt. Printing Office, 1939, IV, P.16, 4 Art plates.
- 52. [Punjab Jaina Bhandaras] A Catalogue of Manuscripts in the Punjab Jaina Bhandaras, comp. by Banarasi Das Jain, contains description of 3168 (2568 Sanskrit and Prakrit, 500 Gujrati and 100 Hindi mss.) in tabular form; with extracts (beginning, ending colophons) of select 75 Sanskrit and 6 Hindi mss. The manuscripts have been arranged by title Λ-Z. Location of each manuscript has been indicated. Introduction throws light on the genesis of Jaina Bhandars in India in general and in the Punjab in particular. A. C. Woolner was instrumental in bringing these manuscripts, preserved in Bhandaras located at Ambalacity, Amritsar, Nakodar, Patti and Zira, to the light. The number of manuscripts in these Bhandaras is 876, 6154, 479, 366, and 711, respectively. Now these manuscripts are housed in the Punjab University Library. Pub. Punjab University, Lahore 1939, P.xiv, 2, 141.
- 53. [Arrah. Jaina Siddhānta Bhavana] Praśasti Sangraha: A Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts by K. Bhujabali Sastri, Jaina Siddhānta Bhavana, Devakumara Granthamala No. 5, Arrah 1942, P. 200, 2.
- 54. [Arrah. Jaina Siddhānta Bhavana] Jaina Siddhānta Bhavana Granthāvalī Devakumar Jaina Prācya

- Granthāgāra, Jaina Siddhānta Bhavana Arrah Kī Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa Evam Hindi Kī Hastalikhita Pāṇḍulipiyon Kī Vistṛta Sūcī ed. by Rṣabhacandra Jain 'Faujadara', comp. by Vinaya Kumar Sinha, description in tabular form of 2020 Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa and Hindi mss. with extracts. The titles are arranged subject-wise. The two of the proposed 6 volumes of this catalogue have been published. Pub. Jaina Siddhānta Bhavana, Arrah 1987.
- 55. [Baroda. Oriental Institute] An Alphabetical list of Manuscripts in the Oriental Institute, Baroda, comp. Raghavan Nambiyar, a classified catalogue in tabular form of 16,439 mss., grouped under languages. There are 15,300 Sanskrit, Prakrit, Gujrati etc mss.. Pub. Oriental Institute, (Gaekwad's Oriental S. No. 97, 114) Baroda. Vol. I, 1942. P. ix, 741. // Vol. II, 1950, P. X, 744. // Vol. III, [Yet to be published.].
- 56. [Baroda. Atmananda Jaina Jñānamandira] Vijayānanda Sūrīśvara Śiṣya Lakṣmīvijaya Śiṣya Hamsavijaya Saṅgṛhīta Bhaṇḍārasya Sūcīpatraṁ (1945) by Muni Puṇyavijaya, a hand list of about 4363 Sanskrit and Prakrit mss. <u>Unpub.</u>
- 57. [Jinavijaya Muni,] Purātanasamayalikhita Jainapustaka Praśasti- Sangraha, ed. Muni Jinavijaya, this catalogue contains information regarding the collection of Colophons and Praśastis (111 in detail and 433 short) of ancient Palm-leaf mss., preserved in the Jaina Bhandaras of Patan, Cambay, Jaisalmer and other places. Pub. Bharatiya Vidya Bhavana (Singhi Series No. 18), Bombay 1943, Pt. I, P.20, 180.
- 58. [Udaipur. Library of H.H. the Maharana of Udaipur (Mewar)] A Catalogue of Manuscript in the Library of H. H. Maharana of Udaipur (Mewar) comp. by M. L. Menaria alphabetical list of about 3700 Sanskrit manuscripts and 2000, Hindi and Rajasthani manuscripts. It also contains the index of Prakrit, Sanskrit, Hindi and Rajasthani authors. This collection

has been transferred to Rajasthan Oriental Research Institute's Udaipur Branch. A revised descriptive catalogue was published by the RORI, Jodhpur. *Pub.* Sarasvati Bhavana Library, 1943. P. 5,5, 287, 40.9.

- 59. [Velankar, Hari Damodar] Jinaratnakośaḥ Vol. I (Works) by Hari Damodar Velankar, an alphabetical register of Jaina works written in Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa and few works of Old Gujrati. Each work contains the information regarding its author, a brief note and where about of the manuscripts described, editions etc. [Vol. II (Authors) yet to be pub.] Pub. Bhandarkar Oriental Institute, Govt. Oriental Series No. 4, Poona 1944, P. 466.
- 60. LJaipur, Amer Śāstra Bhandara Āmer Śāstra Bhandara Jaipur Ke Sanskrit, Prakrit, Apabhrainśa evain Hindi Bhāṣā Ke Granthon Kī Grantha Tathā Praśastiyon Kā Apūrva Saṅgraha ed. by Kasturacanda Kasaliwala, the catalogue lists the colophons of 59 works and 50 authors of Sanskrit, 49 works of Prakrit and Apabhrainśa and 88 works of Hindi mss., deposited in the Amer Śāstra Bhandara. Introduction contains short notes on 98 Sanskrit authors. Indices. Pub. Digambara Jaina Atiśaya Kṣetra Mahāvīra Jī (Śrī Mahāvīra Granthamālā No.2) Jaipur 1950, P.28, 310.
- 61. [Jaipur. Ācārya Śrī Vinayacandra Jaina Bhandara] Ācārya Śrī Vinayacandra Jaina Bhandara (Śodha Pratiṣṭhāna) Granthasūcī by Narendra Bhanavat, the first volume of the catalogue of this collection], possessing about 20, 000 manuscripts, describes in tabular form 3710 mss.: Rajasthani, Hindi, Prakrit and Sanskrit. The catalogue is arranged subjectwise. Appendices include author, scribe and place indices. Introduction contains a list of Research works carried out in Indian Universities in Jaina studies. Its other volumes are yet to be published. Pub. Ācārya Śrī Vinayacandra Jaina Bhandar (Jñāna-Bhandara Prakasana: 1), Jaipur 1968, Vol. I. P. 46,480.

- 62. Jaipur. Digambara Jaina Atiśaya Mandira], Digambara Jaina Mandira Paricaya, Jaipur / Chief Editor Anupacanda Nyāya Tīrtha, description of some Sanskrit, Prakrit mss. preserved in the Digambara Jaina temples of Jaipur. Pub Digambara Jaina Mandira Mahāsangha, Jaipur 1990, P. 178.
- 63. [Dharavad Kannada Research Institute], A Descriptive Catalogue of manuscripts in the Kannada Research Institute, this catalogue published in 12 vols., contains detailed descriptions of about 806 Kannada and Sanskrit mss. The catalogue is arranged tittle wise. Its volumes contain information of the Jaina mss. on religion, Puranas, hymns, philosophical treaties, anthologies, medicine, astrology etc. Pub. Dharavad Kannada Research Institute, Dharwad 1953.
- 64. [Delhi. Jugal Kishore Mukhtar 'Yugavīra' Collection] Jaina Grantha Praśasti Saṅgraha comp. by Jugala Kishore Mukhtar, asstd. by Paramanand Jain Sastri, this catalogue contains 282 colophons of Sanskrit, Prakrit and Apabhramśa mss. and 11 printed works from the Jugala Kishore Mukhtara's own collection (Vol. 1) and from other Bhandaras. <u>Pub.</u> (Two Vols.) Vira Seva Mandira, Vīraseva Granthamala No. 12, 14, Delhi 1954, 1963. P. (Vol.1) 9, 144, 256, (Vol.2, 170, 182).
- 65. [Rajasthan Jaina Bhandaras], Rājasthāna Ke Jainašāstrabhandāron Kī Sūcī/ed. Kasturcanda Kasaliwal, containing the description of over 20,000 manuscripts of about 5000 works written by over 1,000 authors, lying in 45 Bhandaras. These belong to Ajmer, Alwar, Duni, Amova, Bundi, Nainava, Davalana, Indergarh, Fatehpur Shekhavatio, Bharatpur, Diganayi, Purani, Kama, Todarai sigh, Rajmahal, Borasali Kota, Bayana, Vaira, Udaipur, Basawa, Dungarpur, Bhadava, Malpura, Karoli, Dausa and Jaipur. Pub. Digambara Jaina Atiśayakṣetra Śrī Mahāvīra Jī, Jaipur, Vol. 1. Amer Śāstra Bhandara Jaipur Kī granthasūcī, P. 218, contains the description

of manuscripts of following Jaina Bhandaras: 1.Digambara Jaina Śāstrabhndara, Amer Jaipur (P.1-167) manuscripts No. 1- 785. 2. Śrī Digambara Jaina Atiśaya Kṣetra Śrī Mahāvīra Śāstrabhandara, Cananagāmva, Jaipur, (p. 168-218) manuscripts No. 1-308. 3. Amera Bhandara, formerly known as Bhattaraka Devakīrti Bhandara, was originally housed in Digambara Jaina Temple of Neminātha, Amber. Later the collection was transferred to the Mahavira Jaina Bhavana, Jaipur. Presently the collection is preserved at Śrī Mahāvīra Ji, Rajasthan. It contains 2506 manuscripts and 106 Gutakas in Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Hindi, Rajasthani and Gujrati. Vol. II. contains the descriptions of following Bhandaras: 1. Jaipur Ke Śrī Digambara Jaina Mandira (mss. No. 1-1029), 2. Lunakara Ji Pandya Digambara Jaina Mandira Bada Terapanthiyon Ke Śāstrabhandāra Kī Savivaraņasūcī (mss. No. 1-2629), 1954, P, 428 (Mahāvīra Jaina Granthamala No. 6), Vol. III. contains the descriptions of following Bhandaras: 1. Jaipur Ke Śrī Digambara Jaina Mandira Badhicandraji (mss. No. 1-890; p.1-174). 2. Śrī Digambara Jaina Mandira Tholiyon Ke Śāstrabhandaron ke Granthon kī sūcī (mss. No. 1-665; p. 175, 314), cd. Kasturacanda Kasaliwal and Anupacanda Nyāyatīrtha, 1957, P. 22, 384, (Śrī Mahāvīra Jaina Granthamālā No. 7), this volume is arranged subject-wise and has several indices. Vol. IV Jaipur Ke bāraha Jaina Granthabhandāron men Sangrhīta Daśahaĩāra se Adhika Granthon Kī sūcī, ed. Kasturacanda Kasaliwal and Anupacanda Nyāyatīrtha, 1962, P. 4,8,10, 13, 56, 943 (Śrī Mahāvīra Jaina Granthamālā No. 9). This volume contains the description of about 6232 Jaina works comprising about 10,000 mss. Following is the list of 12 Bhandars of Jaipur: 1.Śāstra Bhandara Digambara Jaina Mandira, Patodi. 2.Bābā Dulicanda Kā Śāstra Bhandara. 3. Śāstra Bhandara Digambara Jaina Mandira, Jobaner, 4. Śāstra Bhandara Digambara Jaina Mandira, 5. Bairathiyon Kä, Śāstra Bhandara, 6. Digambara Jaina Naya Mandira Chaudhariyon Kā,

Śāstra Bhandara, 7.Digambara Jaina Mandira Sanghī Jī, Śāstra Bhandara, 8.Digambara Jaina Mandira Chote Divana Ji, Śāstra Bhandara, 9.Digambara Jaina Mandira Godhom Kā, Śāstra Bhandara, 10.Digambara Jaina Mandira, Yaśodānanada Jī, Śāstra Bhandara, 11. Digambara Jaina Mandira Vijayaram Pandya,Śāstra Bhandara and12. Digambara Jaina Mandira Pārśyanātha, Amer Śāstra Bhandara.

- 66. [Waray, G. S.] Waray Collection, by G.S.Waray, Pt. 1 contains alphabetical title-list of Sanskrit and Prakrit manuscripts of the family collection of G.S.Waray. Pub. In: Poona Orientalist, 24 (1-2), 1959, 6-22,
- 67. [Jodhpur. Rajasthan Oriental Research Institute,] Rājasthānī- Hindi Hastalikhita Granthasūcī, the catalogue of manuscripts in Rajasthani- Hindi of this collection is already published in 13 volumes and a few more volumes are yet to be brought out. The catalogue contains description in tabular form of about 25, 000 manuscripts in Rajasthani- Hindi. The mss. in Vol. 1-3 are arranged title-wise and in Vol. 4 onwards are arranged subject -wise. Each vol. contains extracts from select mss. and author Index. The mss. are housed in Jodhpur, Jaipur, Chittorgarh and Udaipur branches of the Institute. Pub. Rajasthan Oriental Research Institute, (Rajasthan Puratana Granthamala No. 44, 58, 122, 128, 142, 143, 144) Jodhpur 1960. The details of the vols. And their contents are as follows: Vol. I (Jodhpur Sangraha) /ed. by Muni Jinavijaya, asstd. by Purusottamalal Menaria and Ramananda Sarasvata. 1960, P. 2, 215. Description in Tabular form of 2166 Rajasthani Mss. collected till March, 1958. Title A-Z. Appendix: Extracts from select mss. (p.! 09-143) Author Index. Vol. II (Jodhpur Sangraha) / ed. by Purusottamalal Menaria. 1961, P. 2, 61,3 Description in Tabular form of 744 Rajasthani Mss, collected till March, 1958-59. Title A-Z. Appendix: Extracts from select

mss. (p. 49-58) Author Index. Vol. III (Jodhpur Sangraha) / Ed. by Omkarlal Menaria, 1974, P.12,496,242, 2 Description of Rajasthani mss. No.1-2344 (p. 1-374), Hindi, Brajabhāṣā etc. mss. No. 2345 -3020 (P. 375-496), Title A-Z. Appendix: Extracts from select mss. (p. 1ž216) Author Index (217-242). Vol. IV (Jodhpur Sangraha) /ed. a by Omkarlal Menaria, 1978, P.8, 449, 59, Description in tabular form of Rajasthani and Hindi mss. No. 1-2603. Subject -wise arrangement. Appendix: Extracts from select mss. (p. 1238) Author Index. Vol. V (Jaipur Sangraha)/ ed. by Omkarlal Menaria and M. Vinayasagar, 1983, P. 8, 484. Contents: Description of mss. (P. 2-344); Extracts from select mss. (p. 346-377); List of short works bound with the mss. marked 'pa' (p. 378-448); title, author indices (p. 448-484) Jaipur Collection contains 11, 892 Hindi, Rajasthani mss.. Out of these acc. Nos. 2178 to 7119 are described. It contains the collections of Srī Badrinarayana, Ramakripalu Sharma and Jinadharendrasuri. Vol. VI (Jaipur Sangraha)/ ed. by Omkarlal Menaria and M.Vinayasagar, 1983, P. 10, 516, Contents: Description of Rajasthani - Hindi mss. No. (P. 1-1626) in tabular form; Title A-Z. Appendix: Extracts from select mss. (p. 261-302); Short works listed in the catalogue as marked 'pa' are listed separately with individual title, (p. 303-372). It contains the collections of Srī Harinarayana Vidyabhusana's Research Correspondence files. (P. 373 -500) Author index. Vol. VII Jodhpur Sangraha, Published-(R.P.G. No. 158), Vol. VIII (Chittorgarh Sangraha)/ ed. D.B. Ksirasagar and Brijesh Kumara Singh, 1983, P. 380. Description in Tabular form of Rajasthani, Hindi Mss. No. 1-2137 (p. 345-373) 2. List of short works listed as marked 'Pa' in the catalogue is listed separately with individual tittle P. (374-380). Author Index. Vol. IX Published. Vol. X Udaipur Sakha, (Derasari sangraha). 1991 (R. P. G.; No. 163). Vol. XI, (Jodhpur Sangraha) / ed. by Shashi Sharma 1992 (R.P.G.; No.

- 169). Vol. XII Chittorgarh Sangraha / ed. by Rajendranath Purohit, 1992 (R. P. G.; No. 171), Vol. XIII Udaipur Sangraha / ed. by B. M. Javaliya & D. B. Kşirasagar, 1992 (R. P. G.; No. 172) More vols. are yet to be published.
- 68. [Jodhpur. Rajasthan Research Institute, Chopasani], A of Manuscripts in the Rajasthani Catalogue **Sodhasansthana Jodhpur**/ed. by Narayana Singh Bhati, this catalogue contains description of about 9110 Rajasthani, 709 Hindi - Braja and 795 Sanskrit mss. Title A-Z. Each Volume contains author Index. The Institute has a collection of about 15,000 manuscripts. The six parts of the proposed catalogue are published and remaining ones are yet to be published. **Pub.** Rajasthani Sodha Sansthana, Chopasani, 1967.Part I. P. 4, 200, Rajasthani mss. No. 1-1402 (p. 3-43, Hindi - Braja mss. No. 1403-1618 (P.143-165), Sanskrit mss. No. 1619-1998 (P. 165-200). Author Index. Part II. 1971. P. 217, 7, Contents: Rajasthani mss. No. 1-1575 (p. 3-152); Hindi -Braja mss. No. 1576-1794 (p. 152-173), Sanskrit mss. No. 1795- 2209 (P. 173- 217). Part III. ed. by Saubhagya Singh Shekhavata, 1973 AD, P. 218, 9, Contents: Rajasthani mss. No. 1-178 (1-191) Hindi-Braja mss. No. 1782-2008 (p. 192-218). Author Index. Catalogues of Sanskrit and Prakrit mss. are to be pub. Separately. Part IV. ed. by Bhalacandra Sharma. 1976.P. 4, 192 Contents: Author Index. Rajasthani mss. No. 1-2025 (1-187). Hindi - Braja mss. No. 2053-2099 (p. 188-192). Part V. / ed. by Vikrama Singh Gundoj, 1986. P. 236, 4 2297mss. Part VI. Published.
- 69. [Jodhpur. Jaina Bhandaras], Jaina Mandiron Ke Jñāna Bhandara Jodhapur: Hastalikhita Granthon Kā Sūcīpatra, comp. by inmates of Seva Mandira, this catalogue describes in tabular form, the manuscripts from the Bhandaras of Jodhpur, in Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa, Hindi and Rajasthani. It

includes the manuscripts of the following Bhandaras: Śrī Keśaria Nāth Ji Mandira, Śrī Cintāmaṇi Pārśvanātha Ji Mandira, Śrī Kunthunātha Ji Mandira, Śrī Vadhamāna Jaina Mandira Tīrtha, Osiya, Jodhapur and Śrī Mahāvīra Svāmī Mandira; Śrī Muni Suvrata Svāmī Mandira Kṣetrapāla, Śrī Seva Mandira, Raotī, <u>Pub.</u> Raoti, Jodhpur. Seva Mandira (Jinadarśana Pratisthana Grantha No.2) Jodhpur 1988, Vol.1, P. 520.

[Jodhpur. Rajasthan Oriental Research Institute] A Catalogue of Sanskrit and Prakrit manuscripts in the Rajasthan Oriental Research Institute/ed. Muni Jinavijaya, this catalogue describes in tabular form about 53,000 Sanskrit and Prakrit mss. Each volume contains various indices of works. authors, commentators, scribes, place names etc. with extracts from select mss. Mss. are housed at Jodhpur, Jaipur, Alwar, Chittorgarh, Bikaner and Udaipur branches of the Institute. Pub. The Institute, (Rajasthan Puratana Granthamala; No. 71, 77, 81, 82, 85, 91, 125, 126, 127, 130, 131, 132, 136, 137, 138, 150), Jodhpur 1963. The details of the parts of this catalogue are as follows: Part. I. (Jodhpur Collection) 1963, P. 16, 86, 373, 159, contains short introduction of the Institute, Index: work, author, commentator, scribe and place names. The volume has the classified description of 3175 Sanskrit, Prakrit mss. in tabular form). Appendix: extracts from important mss. (P.1-159). Part. II. (A) (Jodhpur Collection) 1964, P. 12, 72, 321, 99, Index P.1-172, Tables (Mss. No. 1-2792) (P. 1-321). Appendix Extracts from important manuscripts (1-99). Part. II. (B) (Jodhpur Collection) 1965, P. 9, 72, 349, 202, Index (P.1-72), Tables mss. No. 2793-5875 (P. 1-349). Appendix: Extracts from important manuscripts (1-201). Part. II. (C) (Jaipur Collection) 1966, P. 14, 38, 204, 116, Index (P.1-38), Tables mss. No.1608 (P. 1-204). Appendix: Extracts from important manuscripts (1-116). Part. III (A) (Jodhpur

Collection) 1967, P. 14, 84,429, 90, Index (P.1-48), Tables mss. No.1-3768 (p.1-429) Appendix: Extracts from important manuscripts (1-90). Part. III (B) (Jodhpur Collection) 1968, P. 8, 99, 533, 175, Index (P.1-99), Tables mss. No. 3769-8486(p.1-533) Appendix: Extracts from important manuscripts (1-175). Part. IV (Jodhpur Collection) 1976, P. ix, 73, 418, Index (P.1-73), Tables mss. No. 1- 3253(p.1-366) Appendix: Extracts from important manuscripts (367-418). Part. V (Jodhpur Collection)/ed. by Om Prakash Sharma, 1978, P. 6,39, 176, Contents: Index (P.1-39), Tables mss. No. 1- 1447(p.1-164) Appendix: Extracts from important manuscripts (165-175). (Jodhpur Collection)/ ed. by Acarya Ramanand Sarasvata, 1979, P. 12,30, 197, Contents: Index (P.1-30), Tables mss. Acc. No.23647-25146 (p.1-132) Appendix: Extracts from important manuscripts (133-197). Part. VII. (Jodhpur Collection)/ ed. by M. Vinayasagar & D.B. Ksirasagar 1979, P. 2,48, 198, Contents: Index (P.1-48), Tables mss. Acc. No.25147-26646 Appendix: Extracts from important manuscripts (174-198). Part. VIII. (Jodhpur Collection)/ed. by Thakuradatta Joshi & Dvarakanath Sharma, 1979, P. VI, 32, 188, Contents Index (P.1-32), Tables mss. Acc. No.26647-28147 Appendix: Extracts from important manuscripts (125-188). Part. IX. (Jodhpur Collection)/ ed. by M. Vinayasagar & D.B. Ksirasagar 1979, P. 2, 44,16, 263, Contents: Index (P.1-44), Tables mss. Acc. No.28147-30518 (1- 219) Appendix: Extracts from important manuscripts (220-263). Part. X. (Chittorgarh Collection)/ ed. by D. B. Ksirasagar & S.N. Sharma, 1982, P. 8, 50, 257, Contents: Index (P.1-50), Tables, Appendix: Extracts from important manuscripts (220-263). Part. XI. (Jaipur Collection)/ ed. by M.Vinayasagar & Jamunalal Baldawa, 1984, P. xx, 81, 543, Contents: Index (P.1-18), Tables, mss. Acc. No. 2178-7118(p. 1-508)) Appendix: Extracts from important manuscripts (P. 509- 543). Part. XII

(Udaipur Collection)/ cd. by Brajamohana Jawalia, 1983, P. xii, 83, 371, Contents Index (P.1-81), Tables, and mss. Acc. No. 3219-7118(p. 1-360)) Appendix: Extracts from important manuscripts (P. 361-371). Part. XIII. Jinacaritrasuri collection Bikaner (Bikaner Collection)/ed. by Bhooramal Yati, 1984, P. xiii, 54, 452, Contents: Index (P.1-39), Authors & Commentators (1-54) Tables (p. 2-358) Appendix: Extracts from important manuscripts (P. 36-416), Minor works (P.417-452), Description of 3202 Mans. Deposited in the branch as Srī Pūjya Jinacaritrasuri collection (Acc. No. 12920 δ 18347). The remaining Collection contains Hindi & Rajasthani Mss. Previously, these were housed in the Bada Upasara. Part. XIV. (Jodhpur Collection) (to be published). Part. XV (Jodhpur Collection), Published (R.O. R.I. Series. No.152. Part. XVI (Jodhpur Collection)/ ed. by Om Prakash Sharma & Brijesh Kumar Singh, žž, P. xii, 95,16, 359,36 Contents: Index (P.1-95), Tables mss. Acc. No.33976-37500 (1-359) Appendix: Extracts from important manuscripts (1-36). Part. XVII. (Jodhpur Collection) (to be published). Part. XVIII. (Jodhpur Collection)/ed. by M.Vinayasagar & Jamunalal Baldawa, 1984, P. xii, 69,iii, 548, Contents: Index (P.1-69), Tables, mss. Acc. No. 7119-11982, covering 4773 (p. 1-480) Appendix: Extracts from important manuscripts (P. 481-548). Part. XIX. (Chittorgarh Collection) (to be published). Part. XX. (Moticand Khajanci Collection, Bikaner) (to be published). Part. XXI (Alwar Collection)/ ed. by O.L. Menaria, V.M. Sharma & M. Vinayasagar 1985, P. 12, 108, 880. Description of 5985 Sanskrit & Prakrit mss. upto accession No. 6295. The Pustakashala Collection that was established in 1848 merged with Museum during the Time of Maharaja Teja Singh. Peter Peterson Catalogued 2478 mss. of the collection in 1892. The Collection was transferred to R.O.R.I. out of the total 6711 mss. of Alwar Collection. Additional 1687 mss, were obtained as

106

donation later. Contents: Index: 1. Works (p. 1-76). 2. Authors and Commentators (p. 77-108); Table (P. 2-666) Appendix: Extracts (p. 669-880). **Part XXII.** (To be published).

- 71. [Kastoorcand Kasaliwal.] Jaina Bhandaras in Rajasthan by Kastooracand Kasaliwal, this catalogue contains the detailed account of the Jaina Bhandaras of Rajasthan in particular and of India in general. A list of Jaina Bhandaras with their locations in India; notes on 100 Bhandaras of Rajasthan. It classifies the Jaina Bhandaras of Rajasthan into Ajmer, Bikaner, Jodhpur, Udaipur and Kota Division. Appendix. II & III: contain extracts of some of the mss. 7 Appendices. Pub. Śrī Digambara Jaina Atiśaya Kṣetra Śrī Mahāvīra Ji, Jaipur 1967, P.10, 370, 6 paintings.
- 72. [New Catalogues Catalogurum,] is a comprehensive and exhaustive project, comprising 20 vols. It gives details about the location of manuscripts, publications and studies regarding works in Sanskrit, Prakrit and Pali and their authors. Besides Vedic this monumental work also includes Buddhist and Jaina works and authors as well those works preserved in Tibetan and Chinese translation. Like Jinaratnakośa it also gives information regarding the works known from their quotations only. It may be called as the title- author Index. Each volume contains additions and corrections. Pub. Madras University, (Madras University Sanskrit Series 13, 26-30, 32,38-39). The details regarding the publication - editor, year, etc. and contents of each volume are given as follows: Vol. I. A/ by V. Raghavan, Rev. ed. 1968, P. x, xliv, 505. Contains catalogues lists etc. used in the Catalogues with abbreviations used for them (p. Ixliv. Additons and Corrections (p.491-505). The first edition was published in 1949 under the Chief editorship of C. Kunhan Raja and was prepared by V. Raghavan. P. xxxvi, 380 (Madras University Sanskrit Series). Vol. II. [A-U] ed. by V. Raghavan,

1966, P.13, XL, 415. Additions and Corrections (p. 403-415). Vol. III. [U- Kärtavīrya] ed. by V. Raghavan and K. Kunjunni Raja, 1967, P. IV, 398. List of additional catalogues and other bibliographical materials and abbreviations used for Vol. III (p. I-IV); Additons and Corrections (p.391-398). Vol. IV. [Kārtavīryarjuna- Kṛṣṇasarasvatī] ed. by V. Raghavan and K. Kunjunni Raja, 1968, P.vi, 374. List of additional catalogues and other bibliographical materials and abbreviations used for Vol. IV (p. I-IV); Additions and Corrections (p.367-374). Vol. V. [Krsnasahasranāma-Gā] ed. by V. Raghavan and K. Kunjunni Raja, 1969, P.vi, 375.List of additional catalogues and other bibliographical materials and abbreviations used for Vol. V (p. I-iv); Additions and Corrections (p.351-359). Vol. VI. [Gāyatrīkavaca-Ca] ed. by K. Kunjunni Raja, 1971, P. ii, 412. List of additional catalogues and other bibliographical materials and abbreviations used for Vol. VI (p. ii); Additions and Corrections (p.408-412). Vol. VII. [Ca- N] ed. by K. Kunjunni Raja, 1973, P. x, 389. List of additional catalogues and other bibliographical materials and abbreviations used for Vol. VI (p. ix-x); Additions and corrections (p.383-389). Vol. VIII. [Ţ- Da] ed. by K. Kunjunni Raja, 1974, P. x, 371. Additional bibliography. Additions and corrections (p.383-389). Vol. IX. [Da- Na] / ed. by K. Kunjunni Raja. 1977. P.viii, 419, Additions and corrections (p.409-419), Additional bibliography. Vol. X. [Na- Nva] / ed. By K. Kunjunni Raja; associate editor C.S. Sundaram. 1978. P. 317. Additions and corrections (p.309-317), Additional bibliography. Vol. XI. [Pa] /ed. By K. Kunjunni Raja and N. Veezhinathan; associate editor C.S. Sundaram. 1983. P. vii, lxiii, 283. Catalogues, lists etc. used in the New Catalogus Catalogorum with abbreviations used for them (p.xxxiii-lxiii) Additions and corrections (p.260-283). P. ix, 308. Vol. XIII. [Prā-Bha] / ed. General editor N. Veezhinathan. editor N. Gangadharan 1988. P. Viii, 316. [To be completed in 20 vols.]

- 73. [Tokyo Centre for East Asian Studies,]Hindi Sāhitya Sammelan Ke Saṅgrahālaya men Hastalikhita Hindi Granthon Kā Mahattvapūrņa Saṅgraha by Vacaspati Gairola, list of microfilms deposited in the centre for East Asian Cultural Studies, containing that of a few select manuscripts of the libraries of Indian Institutions. This list also includes the microfilm of the Srī Mahāvīra Jaina Public Library, Delhi, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune, Govt Oriental Manuscripts Library, Madras etc. Compiled by Nobuko Furusawa In: East Asian Cultural Studies, 10 (1-4) (1971), 12 (1-4) 1973.
- 74. [Nagaur. Bhattārakīya Grantha Bhandara] A Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Bhattārakīya Grantha Bhandaras, Nagaur by P.C. Jain, description of about 25,000 Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Hindi, Rajasthani, Gujrati and Kannada manuscripts, arranged subject-wise. Various indices; year, title, author, village and town, rulers. Collection of mss. was started by Muni Ratnakīrti in AD. 1524 The Grantha Bhandara preserved in the precincts of the Digambara Jaina Temples (established in 15th cent. AD by a Śravaka Ajayaraja Patanio) at Nagaur. Pub. Centre for Jaina Studies, University of Rajasthan, Jaipur 1978-1988, 5 vols. The details of the vols. are as follows: Vol. I. P. x. 152, 1978, It contains the details of the manuscripts in the following Bhandaras: 1. Amber Śāstra Bhandara (p. 1-9). 2. Baba Dulicanda, Baba Mandira Grantha Bhandara (10-13). 3. Buddhi Candaji Mandira Grantha Bhandara (14-19), 4. Bairathiyan Jaina Temple Grantha Bhandara (20-23). 5. Chota Diwanaji Jaina Temple Grantha Bhandara (24-27), 6. Godha Jaina Temple Grantha Bhandara (28-33). 7. Jatti Yasoda Nandaji Granthabhandara (34-38). 8. Jivubai Jaina Temple Grantha Bhandara (39-45). 9. Jobner Jaina Temple Grantha Bhandara (46-50). 10. Kharataragacchīya Jñāna Bhandara Jaina Upāśraya, Śivajī Ram Bhayana (51-54).

- 11. Laskar Jaina Temple Grantha Bhandara (55-60). 12. Maruji Jaina Temple Grantha Bhandara (61-65). 13. Pandya Lunkaram Temple Grantha Bhandara (66-71). 14. Pārśvanātha Jaina Temple Grantha Bhandara (72-78) 15. 15. Patodi Jaina Temple Grantha Bhandara (79-85). 16. Sanhiji Jaina Temple Grantha Bhandara (86-96). 17. Sarasvati Jaina Bhavana Bada Mandira Grantha Bhandara (97-107). 18. Tolia Jaina Temple Grantha Bhandara (108-117). 19. Bisapanthi Digambara Jaina Temple Grantha Bhandara / Bada Mandira Nagaur (p.118-146). Vol. II. 1981. P. ii, xxx, 266, 1862 mss. were described. Vol. III. 1985. P. v. xlvii, 681, about 16,000, mss. were described. Also contains the list of all the Grantha Bhandars of Rajasthan. Vol. IV- V. Pub. 1988.
- 75. [Udaipur. Rajasthan Vidyāpītha Sāhitya Sansthāna], Descriptive Catalogue of Sanskrit in Rajasthan Vidyāpītha Sāhitya Sansthan Research Library, Udaipur, Chief editor Devilal Paliwal, description in tabular form of 2598 Sanskrit manuscripts, arranged by subject. Both of its two volumes contain 4 appendices including author, work, indices and extracts from a very few select manuscripts. Pub. Rajasthan Vidyāpītha Sāhitya Sansthan, Udaipur 1978, 1985. 2 vols. (iv 278; 200).
- 76. [Shravanabelagola, Jaina Matha,]Shravanabelagola Śrī Jaina Matha Tāḍapatrīya Granthasūci, ed. Devakumara Shastri, has the description of 448 palm- leaf and 19 paper manuscripts arranged by subject with index. <u>Pub.</u> Śricandragupta Granthamala, Sravanabelagola, Karnataka, 1980, P. XIV, 106.
- 77. [Waltair. Andhra University, Dr. V. S. Kṛṣṇa Memorial Library] simplified catalogue of palm leafs and paper manuscripts arranged alphabetically by title under languages.

  The catalogue contains the information about 2000 Palm leaf

manuscripts and more than 500 paper manuscripts. These manuscripts belong to Prakrit, Sanskrit, Telugu, Tamil, Malayalam and English. The manuscripts listed in this catalogue were procured from the following sources: (1) Embar, Paravasrtu collection of Arsha Library, Vishakhapattanam, (2) collected from Telangana region, (3) Raja of Bobbili, Emani Venkateswarulu of Tummapala etc. *Pub.* Project Supervisor K. Venkataratnam; ed. Surat Babu. Waltair: Dr. V. S. Kṛṣhnan Memorial Library, Andhra University, 1983.P. 448, lxviii.

- 78. [Cambay, Śāntinātha Jaina Bhandara], Catalogue of Palmleaf mss. in Śāntinātha Jaina Bhandara, Cambay/ by Muni Punyavijaya, description of about 290 Palm- leaf manuscripts in Sanskrit. It is divided into two parts. The catalogue has 17 indices including that of author and title. Pub. Oriental Institute, Gawkwad Oriental S. No. 135, 149, Baroda 1961-62, Two vols. (P. 200) and P. 201- 497.
- 79. [Mysore. Institute of Kannada Studies, University of Mysore.] A Descriptive Catalogue of Kannada Manuscripts in the Oriental Research Institute, Mysore- Kannada Hastaprata gala Varṇanātmaka sūcī/ed. by H. Deveerappa, the catalogue describes mostly Kannada manuscripts and some Sanskrit, Prakrit, Tamil, Telugu etc. with extracts and notes. Out of the 9 vols., Vol. No. 1-4 covered mss. collected upto 1954 and vols. upto 5-9 covered 3317 mss. collected since 1954 to March 1978. Pub. - Mysore: The Institute, 1962-1981. Details of the No. of mss. page No. of vols. etc. is given as follows: Vol. I. A-Ca. 1962, P. xi 495. mss. No. 1-49, Vol. II. Ci- Pa. 1962, P. v, 520. mss. No. 498-1001. Vol. III. Ba- La 1963, P. ix, 482. mss.No.1002-1515. Vol. IV. Va- Ha 1963, P. ix, 556. mss. No. 1516-2063. Vol. V. A- Ha 1980, P. xii, 585. mss. No. 1-744. Vol. VI. A-Ph, Vol. VII. Ba- La 1980, P. xii, 665. Vol. VIII. Va- SA 1980, P. xii, 524.mss. No. 1-620.

- Vol. IX. Sa Ha 1980, P. xii, 524. mss. No. 1-378. The Vol. IX contains the title index of the works in Kannada script of the works occurred in the vols. 1-9. Significantly, the titles of the different vols. also vary. The title of the vols. V-IX is Descriptive Catalogue of Kannada Manuscripts, Vol. I-V ed. by H. Deveerappa and B. S. Sannaih. Vol. V-IX: Co-ordinating editor: B. S. Sannaih. Pub. The Institute of Kannada Studies, University of Mysore.
- 80. [Ahmedabad, Lalbhai Dalpatbhai Institute of Indology] Catalogues of Sanskrit and Prakrit Manuscripts: Munirāja Śrī Puņyavijayajī's Collection- comp. Munirāja Śrī Punyavijayajī, the description in tabular form of about 10.000 Sanskrit, Prakrit and Apabhramsa mss. It also contains the extracts from select mss. along with appendices. Muni Punyavijaya Ji presented the collection to the Institute. Presently the Institute has the collection of about 65,000 mss. The preparation of the catalogue is in progress. **Pub.**/ed. A. P. Shah, L. D. Institute of Indology, L. D. S. No. 2,5, 15, 20, Details of the four parts of the catalogue are as follows: Part 1. 1963, P. 12, 480, 210, mss. No. 1-3764, Appendix; Praśastyādisangraha (p. 1-210). Part 2. 1965, P. 12, 484-489. 211-424, mss. No. 3765-6645, Appendix; Praśastyādisangraha (p. 211-424). Part 3. 1968, P. 10, 852-977, 427 646, mss. No. 6646 - 7611, Appendices, Part 4. Ācārya Vijayadevasuri's and Ācārya Kāntisūri's Collection, 1968, P. 16, 319, 178.
- 81. [Ahmedabad. Lalbhai Dalpatbhai Institute of Indology]

  Catalogue of Gujrati Manuscripts: Munirāja

  Puṇyavijayajī's Collection, description of 6715 Gujrati mss.

  with notes on authors. The mss. are arranged subject- wises.

  Pub. comp. by Munirāja Puṇyavijayajī, ed. by Vidhatri

  Avinash Vora, Lalbhai Dalpatbhai Institute of Indology, L. D.

  Series No. 71, Ahmedabad 1978. P. 12, 855.

- 112 : Śramaṇa, Vol. 54, No. 1-3/January-March 2003
- 82. [Allahabad, Hindi Sāhitya Sammelan] Sūraja Subhadrā Kakṣa: Surajaraja Dhariwal dvārā bhenṭasvarūpa pradatta Hastalikhita Granthon Kā Saṅkṣipta Paricaya, the Dhariwal Collection, possessed by the Sammelan, contains about 2,000 mss. in Sanskrit, Prakrit, Apabhramśa, Hindi etc. languages. These mss. dated 12th to 19th century AD. Importance of the collection and short biography of the donor Surajaraja Dhariwal of Gwalior has been recorded as part of the introduction. Appendix contains a list of 209 selected Sanskrit, Prakrit and Hindi mss. with short descriptions. Pub. Hindi Sāhitya Sammelan, Allahabad 1963, p. 15, 4 plates.
- 83. [Allahabad. Hindi Sāhitya Sammelan] Description in tabular form of 88 Hindi mss. related to Jainism. <u>Pub.</u> In: Sammelan Patrika, 58 (2). 1972.
- 84. [Allahabad. Hindi Sāhitya Sammelan] Sanskrit -Prakrit Hastalikhita Granthon Kī Vivaraṇātmakasūcī / ed. by Candika Prasad Sukla, description in tabular form of 5710 Sanskrit and Prakrit mss. in two vols. Pub. Hindi Sāhitya Sammelan, Allahabad 1976 / 77, 2 Vols. P. (vol.1) 482, 21; (Vol.2) 483 986.

# विद्यापीठ के प्रांगण में

### प्रो० रामचन्द्रराव विद्यापीठ में

राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा दिनांक ४ जनवरी को पार्श्वनाथ विद्यापीठ के सभागार में आयोजित समारोह में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपित, सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो॰ रामचन्द्र राव ने विज्ञान और मानव समाज नामक विषय पर अपना विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। अपने व्याख्यान में उन्होंने अनेक स्लाइड्स भी दिखाये। इस अवसर पर बड़ी संख्या में स्थानीय विद्वान्, विद्यापीठ के प्राध्यापक एवं शोधछात्र उपस्थित थे।

#### प्रवासी जैन तीर्थयात्रियों का विद्यापीठ में आगमन

२३ जनवरी को अमेरिका के प्रवासी जैन तीर्थयात्रियों का एक समूह श्री दिलीप वी० शाह के नेतृत्व में वाराणसी पहुँचा। इस समूह में कुल २४ तीर्थयात्री थे। २४ जनवरी को प्रात: ९.३० बजे उक्त सभी तीर्थयात्री विद्यापीठ पधारे। यहाँ विद्यापीठ की संचालक समिति के सचिव प्रो० सागरमल जैन, निदेशक- प्रो० महेश्वरी प्रसाद, वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह एवं डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय तथा संस्थान के अन्य लोगों ने उनका स्वागत किया। आगन्तुक अतिथियों ने संस्थान परिसर स्थित विभिन्न भवनों, कलादीर्घा एवं पुस्तकालय का निरीक्षण किया और विद्यापीठ द्वारा परिचालित विभिन्न योजनाओं के लिये १५ हजार रुपये की राशि तुरन्त अनुदान के रूप में प्रदान की। श्री दिलीप वी० शाह ने विद्यापीठ में तैयार हो रहे जैन विश्वकोश की प्रगति पर भी प्रसन्नता व्यक्त की।

### श्री डी० आर० मेहता पार्श्वनाथ विद्यापीठ में

सेबी के पूर्व अध्यक्ष और भगवान् महावीर विकलांग सेवा समिति एवं प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर के संस्थापक श्री डी०आर० मेहता अपने वाराणसी प्रवास के दौरान दिनांक ३० जनवरी २००३ को विद्यापीठ में पधारे। यहाँ उन्होंने परिसर स्थित नवीन भवनों, यहाँ के समृद्ध पुस्तकालय, कलादीर्घा आदि को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए इसे जैन विद्या का एक महान् केन्द्र बतलाया और ध्यान एवं योग पर रचे गये मौलिक ग्रन्थों के हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद एवं उनके प्रकाशन हेतु पार्श्वनाथ विद्यापीठ एवं प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर में परस्पर सहयोग पर

बल दिया। ज्ञातव्य है कि उक्त दोनों संस्थायें परस्पर सहभागिता से अब तक विभिन्न प्रन्थ प्रकाशित कर चुकी हैं तथा खरतरगच्छ का इतिहास नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो तीन खण्डों में है, उक्त दोनों संस्थाओं द्वारा संयुक्त रूप से शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। श्री मेहता ने जैन नाटकों एवं जैन चित्र कथा के संयुक्त प्रकाशन हेतु भी प्रोजेक्ट तैयार करने का आग्रह किया।

## मरुधरज्योति पू० साध्वी मणिप्रभा श्रीजी ससंघ विद्यापीठ में

खरतरगच्छीय प्रवर्तिनी स्व० विचक्षण श्रीजी म०सा० की सुशिष्या मरुधर ज्योति पू० साध्वी मणिप्रभा श्रीजी म०सा० अपनी सम्मेतिशिखर यात्रा के दौरान ससंघ २८ फरवरी को प्रात: विद्यापीठ पधारीं। आपके साथ साध्वी विद्युत्प्रभा श्रीजी, साध्वी हेमप्रज्ञा श्रीजी, साध्वी मृदुला श्रीजी, साध्वी अतुलप्रभा श्रीजी, साध्वी आत्मिनिध श्रीजी, साध्वी संयमिनिध श्रीजी, साध्वी अक्षयिनिध श्रीजी, साध्वी सद्भावना श्रीजी एवं मुनि महेन्द्रसागर तथा मुनि मनीषसागर भी थे।

विद्यापीठ में अपने दो दिन के प्रवास में साध्वी श्री मणिप्रभा श्रीजी ने संस्थान की विभिन्न गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया और यहाँ की सुव्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित हुईं। आपके साथ पधारे दोनों मुनिजन श्री महेन्द्रसागर जी म० एवं श्री मनीषसागर जी म० अध्ययनार्थ विद्यापीठ में रुके हुए हैं। यहाँ उनका अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा है। दो दिन रुकने के पश्चात् साध्वी जी महाराज एवं उनके साथ पधारी सभी साध्वियाँ पार्श्वनाथ जन्मस्थान मन्दिर, भेलूपुर गयीं, जहाँ लगभग १ सप्ताह रुकने के पश्चात् वे ससंघ सम्मेतिशिखर के लिये रवाना हो गयीं।

# पू० साध्वी ॐकार श्रीजी महाराज ठाणा १० का विद्यापीठ से विहार

पार्श्वचन्द्रगच्छीय साध्वी आर्या पू० ॐकार श्रीजी ठाणा १० ने वर्ष २००२ का चातुर्मास पूर्ण कर ७ मार्च को भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ जन्मभूमि मन्दिर के लिये प्रस्थान किया। आपके साथ साध्वी चन्द्रकला श्रीजी म०, साध्वी पुनीतकला श्रीजी म०, आर्या भव्यानन्द जी म०, आर्या संयमरसा श्रीजी म०, साध्वी सिद्धान्तरसा श्रीजी म०, साध्वी नमनकला श्रीजी० म०, साध्वी संवेगरसा श्रीजी म०, साध्वी शासनरसा श्रीजी म० एवं साध्वी मैत्रीकला श्रीजी म० थीं। साध्वी भव्यानन्द जी म०, साध्वी संवेगरसा श्रीजी, साध्वी सिद्धान्तरसा श्रीजी, साध्वी शासनरसा श्रीजी एवं साध्वी मैत्रीकला श्रीजी ने दो वर्ष तक निरन्तर विद्यापीठ में प्रवास करते हुए जैन साहित्य, दर्शन, व्याकरण, संस्कृत भाषा, जैन संघ के इतिहास आदि का विश्वप्र अध्ययन किया साथ ही जैन विश्वभारती, लाडनूं द्वारा आयोजित स्नातक प्रथम वर्ष की परीक्षा भी उच्च अंकों से उत्तीर्ण की। साध्वी सिद्धान्तरसा जी म० ने इस परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त

किया। १२ दिन पार्श्वनाथ जन्मभूमि मन्दिर, वाराणसी में प्रवास करने के उपरान्त साध्वियों ने दिनांक १९ मार्च को इलाहाबाद के लिये प्रस्थान किया। ज्ञातव्य है कि आर्या ॐकार श्रीजी ठाणा १० का अगला चातुर्मास कानपुर में होना निश्चित हुआ है।

# विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम् द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगोष्ठी सम्पन्न

वाराणसी १० मार्च; पार्श्वनाथ विद्यापीठ के भव्य सभागार में विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम् द्वारा त्रिदिवसीय (मार्च ७-९, २००३) अखिल भारतीय संगोछी का आयोजन किया गया। ज्ञातव्य है कि महान् विद्याप्रेमी, पूर्व काशिराज स्व० डॉ० विभूतिनारायण सिंह द्वारा संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार एवं उच्चस्तरीय अध्ययन/संशोधन हेतु स्थापित इस संस्था का केन्द्रीय कार्यालय दुर्ग, रामनगर, वाराणसी में है। काशी की महाराजकुमारी कृष्णप्रिया इसकी अध्यक्षा तथा मुम्बई निवासी पण्डित गुलाम दस्तगीर विराजदार इसके महामन्त्री हैं। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न भागों से पधारे ६० विद्वानों ने अपने शोधपत्रों का वाचन किया। प्रो० राजाराम मेहरोत्रा संगोष्ठी के प्रारम्भिक सत्र के अध्यक्ष थे। समापन सत्र में न्यायमूर्ति श्री मार्कण्डेय काटजू ने न्याय प्रणाली में मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों की उपयोगिता बतलाकर श्रोताओं को चिकत कर दिया। कार्यक्रम को सफल बनाने में प्रो० अमरनाथ पाण्डेय, प्रो० कृष्ण बहादुर एवं प्रो० महेश्वरी प्रसाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। संस्था ने सभी आगन्तुक अतिथियों के भोजन एवं आवास की सुन्दर व्यवस्था पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिसर में की थी।

### कनाडा का शोधछात्र विद्यापीठ में

ज्योर्तिलिंगों पर शोधकार्य कर रहे कनाडा निवासी श्री वेंजामिक फ्लेमिंग अपने भारत प्रवास में दिनांक २१ मार्च को विद्यापीठ पधारे। यहाँ वे एक सप्ताह पर्यन्त रुके। इस अविध में उन्होंने यहाँ के पुस्तकालय का पूर्ण उपयोग किया।

## प्रो० वी०एस० पाठक विद्यापीठ में

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व के विश्वविख्यात् विद्वान् और गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपित प्रो० वी०एस० पाठक दिनांक २२ मार्च को विद्यापीठ पधारे। अपने दो दिन के प्रवास में प्रो० पाठक ने यहाँ हो रहे शोधकार्यों की जानकारी प्राप्त की और शोधछात्रों एवं अध्यापकों को अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होंने यहाँ के पुस्तकालय का भी सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और इसकी समृद्धि एवं सुव्यवस्था पर सन्तोष व्यक्त किया।

### विदेशी शोध छात्र विद्यापीठ में

स्वीडेन की Lund University के ८ शोधछात्र अपने वाराणसी प्रवास के दौरान २ अप्रैल को दिन में ११ बजे विद्यापीठ पधारे। उन्होंने यहाँ हो रहे शोध कार्यों की जानकारी प्राप्त की। संस्थान में अध्ययनार्थ विराजित मुनि श्री महेन्द्रसागर एवं मुनि मनीषसागर से जैन साध्वाचार के सम्बन्ध में चर्चा की एवं यहाँ के समृद्ध पुस्तकालय एवं महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों का अवलोकन किया।

## पार्श्वनाथ विद्यापीठ में तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी और जैन विद्या संस्थान, लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में Śramaṇa Traditions up to Mahāvīra & Gautama Buddha नामक विषय पर २६-२८ अप्रैल २००३ को तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोछी का आयोजन किया गया है। इस संगोछी में सहभागिता हेतु विभिन्न विद्वानों ने अपनी स्वीकृति प्रदान की है। ज्ञातव्य है कि पार्श्वनाथ विद्यापीठ में यह सर्वप्रथम संगोछी है जो जैन विद्या संस्थान, लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित है।

# जैन जगत्

# श्री ओमप्रकाश जैन 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित

नई दिल्ली २७ जनवरी; कुन्दकुन्द भारती न्यास के न्यासी एवं सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री ओमप्रकाश जैन को गणतन्त्र दिवस के अवसर पर 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित किये जाने हेतु चयनित किया गया है। श्री जैन को उनकी इस गरिमापूर्ण उपलब्धि हेतु विद्यापीठ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

# पार्श्वनाथ विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण कर चुकी तीन मुमुक्षु बहनों की भगवती दीक्षा सम्पन्न

थाणा ६ फरवरी; पार्श्वनाथ विद्यापीठ में रहकर संस्कृत, प्राकृत और जैनदर्शन का अभ्यास करने वाली लिम्बडी अजरामर सम्प्रदाय की तीन मुमुक्षु बहनों सुश्री भाविनी एच० कारिया, सुश्री विनता एस० डागा और सुश्री प्रमिला एस० छेड़ा की भागवती दीक्षा साधु-साध्वियों एवं विशाल संघ की उपस्थित में थाणा, महाराष्ट्र में ६ फरवरी को सम्पन्न हुई। इस अवसर पर अन्य मुमुक्षुओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। ८ मुमुक्षु बहनों को अजरामर सम्प्रदाय की महासती मंजुला जी द्वारा तथा एक मुमुक्षु भाई की मुनि दीक्षा पूज्य श्री रामचन्द्र जी स्वामी द्वारा दी गयी।



सुश्री वनिता एस० डागा



सुश्री भाविनी एच० कारिया



सुश्री प्रमिला एस० छेड़ा

इस अवसर पर कुल २१ मुनि और ३०० साध्वियाँ उपस्थित थीं जिनमें लिम्बडी अजरामर सम्प्रदाय के गादीपति पूज्य नरसिंह जी स्वामी, पूज्य रामचन्द्र स्वामी, पूज्य भावचन्द्र जी स्वामी, पूज्य भास्कर जी स्वामी, पूज्य प्रकाश स्वामी, श्रमण संघ के पूज्य गौतम मुनि और पूज्य विनय मुनि जो तथा महासती वर्ग में साध्वीवर्या महासती मंजुला जी, महासती रिश्मना जी, अंचलगच्छीया साध्वी मोक्षगुणा श्रीजी एवं साध्वी ध्यानगुणा श्रीजो की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। नवदीक्षिता मुमुक्षुओं में से सुश्री भावना एच० कारिया को दीक्षोपरान्त महासती ध्रुविता श्री; सुश्री विनता एस० डागा को महासती अनुभूति श्री और प्रमिला एस० छेड़ा को महासती परमेश्वरी जी नाम दिया गया। दीक्षा समारोह की सुन्दर व्यवस्था के लिये थाणा जैन संघ एवं अजरामर लिम्बडी सम्प्रदाय के श्री छबील भाई टी० शेठ, श्री नेणशी भाई, श्री डी०टी० निसर एवं श्री शैलेश भाई गाला बधाई के पात्र हैं। इस अवसर पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ का प्रतिनिधित्व डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय ने किया।

# शत्रुंजय तीर्थ पर दीक्षा एवं अंजनशलाका प्रतिष्ठा सम्पन्न

पालिताना ९ फरवरी; शत्रुंजय महातीर्थ की पावन धरा पर बाबू माधवलाल जी द्वारा निर्मित श्री सुमितनाथ जिनालय के परिसर में दिनांक ६ फरवरी को मुमुक्षु गौतम कुमार कांकरिया, मुमुक्षु मनीष कोचर, मुमुक्षु प्रतिमा लूंकड एवं मुमुक्षु शालिनी वैराठी की भागवती दीक्षा उपाध्याय श्री मिणप्रभसागर जी महाराज की पावन निश्रा में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर उक्त परिसर में नविनर्मित श्री भक्तामर मन्दिर, दादावाड़ी एवं गच्छ परम्परा मन्दिर की अंजनशलाका प्रतिष्ठा उपाध्याय श्री मिणप्रभसागर जी एवं साध्वीरत्न श्री शशिप्रभा श्रीजी महाराज की पावन निश्रा में ८ फरवरी को सम्पन्न हुई। साध्वी शशिप्रभाश्री जी महाराज की प्रेरणा से यहाँ स्थित बाबू माधवलाल जी की धर्मशाला का भी जीणोंद्वार सम्पन्न हुआ।

# भंवरलाल जी नाहटा की पुण्यतिथि पर विशेष डाक मुहर एवं विशेष आवरण जारी

कोलकाता ११ फरवरी; पुरातत्त्ववेत्ता, साहित्य वाचस्पित, श्रावकरत्न भंवरलाल जी नाहटा की प्रथम पुण्यितिथ पर श्री जैन विद्यालय, सूक्तियस लेन, कलकत्ता के प्रांगण में प्रात: ९.३० बजे प्रो० कल्याणमल जी लोढ़ा, पूर्व कुलपित, जोधपुर विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रो० वसुमित डागा प्रधान वक्ता के रूप में उपस्थित थीं। समारोह के मुख्य अतिथि पश्चिम बंगाल सरकार के मन्त्री श्री मुहम्मद सलीम थे। इस अवसर पर पोस्टमास्टर जनरल श्री एम० कुमार ने भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी की गयी विशेष डाक मुहर एवं विशेष आवरण का लोकार्पण किया। वक्ताओं ने इस बात पर जोर दिया कि जैसा कि पूर्व में आचार्य तुलसी, श्री चौथमल जी महाराज, डॉ० जगदीश चन्द्र जैन आदि पर डाक टिकट जारी किये गये हैं वैसे ही भंवरलाल जी

### ११९ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

नाहटा पर भी एक डाक टिकट जारी हो इस समारोह में बड़ी संख्या में नाहटा जी के प्रशंसक उपस्थित थे। श्री पदमचन्द जी नाहटा ने नाहटा परिवार की ओर से आगन्तुक अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त किया।



पोस्टमास्टर जनरल श्री एम०कुमार स्व० नाहटा जी की प्रथम पुण्यतिथि पर विशेष आवरण एवं विशेष डाक मुहर का लोकापर्ण करते हुए



भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी विशेष आवरण एवं विशेष मुहर

## शाजापुर में योग एवं ध्यान शिविर सम्पन्न

शाजापुर १९ मार्च; होली पर्व के पावन प्रसंग पर म०प्र० राज्य के मालवांचल में स्थित शाजापुर नगर में सुरम्य प्राकृतिक वातावरण से परिपूर्ण दुपाडा रोड पर स्थित प्राच्य विद्यापीठ के सुन्दर एवं विशाल भवन में परम श्रद्धेय संत श्री भानु विजयजी महाराज (पाटण-गुजरात), जैन धर्म-दर्शन के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त विद्वान् श्रद्धेय डॉ० सागरमलजी जैन सा०, शाजापुर तथा राष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त योग एवं प्राणायाम विशेषज्ञ श्री चन्द्रशेखरजी आजाद सा०, इन्दौर के सानिध्य में सर्वमंगल परिवार म०प्र० के सौजन्य से दिनांक १५-१६-१७-१८ मार्च को चार दिवसीय मौन-योग-ज्ञान-ध्यान शिविर सम्पन्न हुआ। इसमें गुजरात के विभिन्न नगरों तथा म०प्र० के इन्दौर, उज्जैन और भोपाल से पधारे शिविरार्थियों और स्थानीय लोगों ने भाग लिया जिनकी संख्या लगभग २०० रही।

इस चार दिवसीय शिविर में 'काया की निरोगिता से लेकर माया के बीच रहते हुए कैसे व्यक्ति आनन्दित रहे' इसका प्रशिक्षण शिविर के विभिन्न सत्रों में शिविरार्थियों को दिया गया।

शिविर के प्रवचन सत्रों में अपनी अमृतवाणी की वर्षा करते हुए श्रद्धेय संत श्री भानु विजयजी महाराज एवं श्रद्धेय सागरमलजी सा० ने प्रतिपादित किया कि ज्ञान के बिना ध्यान एक कर्मकाण्ड होकर रह जाता है जो परिणाममूलक नहीं हो सकता। साथ ही यह भी कहा कि आनन्द की उपलब्धि के लिये ध्यान श्रेष्ठतम उपाय है। यदि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् ध्यान दोनों साथ-साथ चले तो परिणाम निश्चित है।

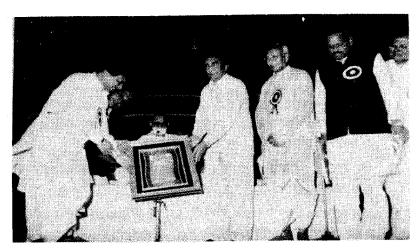
गत वर्ष भी होली पर्व के पावन अवसर पर सर्वमंगल परिवार ने प्राच्य विद्यापीठ में ज्ञान-ध्यान शिविर का आयोजन किया था। तभी से प्राच्य विद्यापीठ में प्रतिदिन प्रात: ६ से ७ बजे तक तथा रात्रि को ८ से ९ बजे तक नियमित रूप से डॉ॰ सागरमलजी जैन के मार्गदर्शन में ध्यान-साधना हो रही है जिसमें १५ से २५ सदस्यों की उपस्थित प्रतिदिन बनी रहती है। सर्वमंगल परिवार की ओर से आदरणीय शांतिलालजी सा॰ भोपाल, श्री सुरेश भाई— इन्दौर ने एक चर्चा में बताया कि जैन मनीषी डॉ॰ सागरमलजी जैन के सानिध्य में प्राच्य विद्यापीठ में नियमित रूप से जारी ध्यान-साधना से प्रेरित होकर ही हमने शाजापुर नगर में पुनः ध्यान साधना शिविर का आयोजन किया है।

शिविर का कुशल संचालन डॉ॰ एस॰टी॰ कोटक (डीसा-गुजरात) ने किया। आपने विभिन्न ध्यान सत्रों में ध्यान-साधना भी सम्पन्न करवाई। भोपाल से पधारी ओशो की शिष्या माँ पूर्णिमा ने भी ध्यान साधना ओशो विधि से करवाई। भाई विमल भण्डारी (भोपाल), प्रज्ञा बहन (गुजरात) तथा लोकेन्द्रजी नारेलिया एण्ड पार्टी ने शिविरार्थियों को भिक्त संगीत में डूबोया। श्री चन्द्रशेखरजी आजाद ने शिविरार्थियों को योगासन एवं प्राणायाम का प्रशिक्षण दिया।

शिविर के समापन अवसर पर प्राच्य विद्यापीठ परिवार और शाजापुर नगरवासियों की ओर डॉ॰ राजेन्द्र जैन ने संत श्री भानुविजयजी, डॉ॰ सागरमल जी जैन, श्री चन्द्रशेखरजी आजाद, सर्वमंगल परिवार के सदस्यों डॉ॰ एस॰टी॰ कोटक साः भाई विजल भण्डारी, प्रज्ञा बहन तथा प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी भाई-बहनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

# डॉ० कुमारपाल देसाई 'जैन गौरव' अलंकरण से सम्मानित

मुम्बई २३ मार्च; चैतन्य काश्यप फाउण्डेशन द्वारा स्थापित और भारत जैन महामण्डल द्वारा प्रवर्तित प्रथम 'जैन गौरव' अलंकरण सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कुमारपाल देसाई अहमदाबाद को प्रदान किया गया। २३ मार्च को मुम्बई के क्रास मैदान में आचार्य महाप्रज्ञा जी की निश्रा में आयोजित एक भव्य समारोह में डॉ० देसाई को सम्मानराशि के रूप में सवा लाख रुपये और मानपत्र भेंट किया गया। इस समारोह में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री के०सी० सुदर्शन, केन्द्रीय मन्त्री श्री सत्यनारायण जटिया, गुजरात विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री धीरूभाई शाह तथा समाज के अनेक गणमान्यजन उपस्थित थे।



आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में 'जैन गौरव' अलंकरण प्रदान करते हुए केन्द्रीय मन्त्री श्री सत्यनारायण जटिया, महामण्डल के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री पत्रालाल सुराना, अलंकरण प्राप्त करते हुए डॉ० कुमारपाल देसाई, पास में खड़े हैं श्री के०सी० सुदर्शन, श्री चैतन्य काश्यप तथा श्री धीरूपाई शाह।

जैन जगत: १२२

# वीर सुरेशचन्द्र जैन 'प्राईड ऑफ इण्डिया' पुरस्कार से सम्मानित

चण्डीगढ़ २६ मार्च; भारतीय जैन मिलन के अध्यक्ष वीर सुरेशचन्द्र जैन को ग्लोबल इकोनॉमिक कौंसिल व इण्टरनेशनल फ्रेन्डिशाप फोरम ऑफ इण्डिया द्वारा पिछले दिनों चण्डीगढ़ में आयोजित कान्फ्रेन्स के अवसर पर **प्राईड ऑफ इण्डिया** पुरस्कार से सम्मानित किया गया। श्री जैन को यह सम्मान उनके द्वारा सामाजिक क्षेत्र में निर्बल वर्ग की सहायता, राष्ट्रीय एकता व समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण को अग्रसर बनाने में उल्लेखनीय सेवा के लिये प्रदान किया गया। श्री जैन को उनकी इस गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिये विद्यापीठ परिवार द्वारा हार्दिक बधाई।

## समणी संबोधप्रज्ञा जी पी-एच०डी० की उपाधि से सम्मानित

जैन विश्व भारती, लाडनूं द्वारा समणी संबोधप्रज्ञा जी को उनके द्वारा लिखित शोधप्रबन्ध 'अर्घमागधी आगमों में आत्मतत्त्व की अवधारणा' पर पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गयी। समणी जी ने अपना उक्त शोधप्रबन्ध प्राकृत एवं जैनागम विभाग, जैन विश्व भारती के सह आचार्य डॉ० हरिशंकर पाण्डेय के निर्देशन में पूर्ण किया। समणी जी को उनकी इस अकादिमक उपलब्धि के लिये पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से हार्दिक बधाई।

# जैन विद्या-विद्वान् निर्माण योजना

जैन विद्या में स्नातक उपाधि, स्नातकोत्तर उपाधि, उच्च अध्ययन एवं शोधकार्य करने के इच्छुक व्यक्तियों से आवेदन-पत्र आमन्त्रित हैं।

### अर्हताएँ :

- (१) जैन विद्या में स्नातक उपाधि (बी०ए०) के लिये १०+२ से हायर सेकेण्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिये। अन्यथा वह प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही स्नातक परीक्षा में बैठने के लिये पात्र होगा।
- (२) जैन विद्या में स्नातकोत्तर उपाधि (एम०ए०) के लिये स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए।
- (३) उच्च अध्ययन एवं शोध कार्य के लिये किसी भी विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए।

### शर्ते एवं सुविधाएँ

(१) जैन विद्या में स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि परीक्षाओं में बैठने के इच्छुक लोगों को प्रवेश आवेदन शुल्क, प्रवेश शुल्क, परीक्षा फार्म शुल्क, परीक्षा शुल्क आदि व्यय स्वयं वहन करने होंगे। वस्तुतः यें परीक्षाएँ जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूँ के दूरस्थ शिक्षा निदेशालय द्वारा आयोजित की जाती हैं और वही उपाधि प्रदान करता है। प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड-शाजापुर इसे वि विद्यालय का अध्ययन-अध्यापन एवं परीक्षा केन्द्र है जो आपके प्रवेश आवेदन-पत्र, परीक्षा आवेदन-पत्र को विश्वविद्यालय में प्रेषित करने के लिये अग्रेषित करेगा। इस हेतु आपको अग्रेषण शुल्क देना होगा। साथ ही यह केन्द्र-आपको अध्ययन, मार्गदर्शन एवं पुस्तकालय की निःशुल्क सुविधा उपलब्ध कराएगा। आवास एवं भोजन की सुविधा सशुल्क रहेगी। इस सम्बन्ध में सीमित आय वाले योग्य विद्यार्थियों को परीक्षा एवं आवास शुल्क में सहयोग राशि प्रदान की जा सकती है।

### छात्रवृत्ति (स्कॉलरशिप)

- (२) जैन विद्या में उच्च अध्ययन के इच्छुकों को संस्था में रहकर ही उच्च अध्ययन करना होगा। इस हेतु उन्हें रुपये ३०००.०० (तीन हजार रुपये) प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान की जावेगी जिसमें से रुपये १०००.०० (एक हजार रुपये) प्रतिमाह भोजन और आवास सुविधा के लिये काटा जावेगा। यह छात्रवृत्ति तीन वर्ष की अविध के लिये होगी। छात्रवृत्ति की निरन्तरता जैन विद्या के अध्ययन के क्षेत्र में उसकी प्रगति के मूल्यांकन पर निर्भर होगी जिसके लिये विद्यापीठ प्रति तीसरे माह परीक्षा आयोजित करेगा जिसमें प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होना अपिरहार्य होगा। छात्रवृत्ति के लिये चयनित विद्यार्थियों को प्राच्य विद्यापीठ शाजापुर के अकादिमक, पुस्तकालय एवं प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों को रुचिपूर्वक करने होंगे। इन कार्यों में उसकी योग्यता एवं क्षमता आदि को भी उसकी प्रगति के मूल्यांकन का एक अंश माना जावेगा।
- (३) उम्र एवं जाति का बन्धन नहीं, किन्तु जैन धर्म-दर्शन का पूर्व ज्ञान आवश्यक है एवं इस हेतु अभ्यर्थियों के मूल्यांकन हेतु पूर्व में एक परीक्षा आयोजित की जावेगी।

कोई भी इच्छुक अपना आवेदन (जिसमें नाम, पता, शैक्षणिक योग्यता तथा अन्य कोई विशेष योग्यता की जानकारी हो तथा राजपत्रित अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित अंकसूचियों, प्रमाण-पत्रों की सत्य प्रतिलिपियाँ संलग्न हों।) निम्न पते पर प्रेषित कर सकता है -

जैन जगत: १२४

निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर (म०प्र०), पिन-४६५००१। (आवेदन की अन्तिम तिथि ३१ मई, २००३)

### शोक समाचार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के संचालक समिति के सदस्य सुश्रावक श्री वी के जैन का दिनांक २१ फरवरी २००३ को फरीदाबाद में निधन हो गया। प्रकार विद्यापीठ परिवार श्री जैन को हार्दिक श्रद्धां जाति अपित करता है तथा ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुनन्दा देवी को इस दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

# साहित्य सत्कार

नयनामृतम्, सं०- मुनिश्री वैराग्यरित विजय जी, प्रकाशक— प्रवचन प्रकाशन, पूना, प्राप्ति स्थान— भूपेश भायाणी, ४८८, रविवार पेठ, पूना ४११००२, प्रथम संस्करण २००२, आकार— डिमाई, पृष्ठ १४+१४६, मूल्य ७० रुपये।

मुनिश्ली वैराग्यरित विजय जी द्वारा सम्पादित नयामृतम् 'नय' का पूर्ण ज्ञान कराने में सक्षम है। तत्त्व को यथार्थ रूप में जानने के लिए प्रमाण और नय को जानना आवश्यक है। प्रस्तुत संग्रह में दस ग्रन्थों से नय सम्बन्धी विचार को एक जगह संकलित किया गया है। इसके प्रथम पर्व में अनुयोगद्वारसूत्र का 'नयानुयोग', द्वितीय पर्व में 'नयकर्णिका' तृतीय पर्व में 'नय रहस्य', चतुर्थ पर्व में 'अनेकान्त व्यवस्था', पंचम पर्व में तत्त्वार्थसूत्र का 'नयाधिगमः', षष्ठ पर्व में 'नयोपदेश', सप्तम पर्व के प्रमाणनय तत्त्वालोक का 'नयपिच्छेद', अष्टम पर्व में 'नय प्रकाशस्तव', नवम पर्व में 'नयचक्रालापपद्धित' एवं दशम् पर्व में 'नयचक्रसार' के अन्तर्गत विशेषावश्यकभाष्य एवं स्याद्वादरत्नाकर में वर्णित 'नय' के स्वरूप का वर्णन है। इस छोटी सी पुस्तक में 'नय' के बारे में एक साथ सम्पूर्ण जानकारी मिल जाती है। चूंकि पुस्तक संस्कृत में है अतः विद्वत्जन को चाहिए कि इसका हिन्दी अनुवाद यथाशीघ्र प्रकाशित करें जिससे संस्कृत जानने वाले पाठक भी इसका लाभ उठा सकें।

आयार सुत्तं, महामहोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर जी, प्रकाशक— जिनशया फाउण्डेशन, ९ सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट, कलकत्ता ७०००६९, द्वितीय संस्करण २००, पृष्ठ २७७, मूल्य ३०/-

आयार सुत्तं आगम ग्रन्थ है जिसमें भगवान् महावीर की आचार सम्बन्धी वाणी संग्रहीत है। ग्रन्थ की शैली सूत्रात्मक एवं भाषा अर्द्धमागधी है जिसे चन्द्रप्रभसागर जी ने जनसामान्य को आत्मसात कराने के लिए सूत्रात्मक हिन्दी अनुवाद किया है। शान्त एवं वैराग्य रस का समन्वय आयार सुत्तं में श्रमण नीति का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष दृष्टिगत होता है। चन्द्रप्रभसागर जी द्वारा अनेकों शिक्षाप्रद ग्रन्थ निःसृत हो चुके हैं। आयारसुत्तं को जन-जन तक पहुँचाने का यह उनका उत्तम प्रयास है। इसमें कुल ९ अध्याय हैं जिसमें नीतिपरक चर्चा है। अगर सुधीजन इसे आत्मसात् करें तो अवश्य विश्व का कल्याण होगा।

जगत् में धर्म सर्वोपिर है (महापुरुषों की वाणी), संकलन— केवल चन्द जैन, प्रकाशक— संघवी लालचन्द जीवराज एण्ड कं०, डी०एल०लेन, चिंकपेट, बैंगलोर-५३, प्राप्ति स्थान— शा० लालचन्द मदनराज एण्ड कं०, ७/२८ एम०पी०लेन, चिंकपेट, बैंगलोर-५३, आकार— डिमाई, पृ० २०८, मूल्य— सदुपयोग।

केवल चन्द जैन संकलित जगत में धर्म सर्वोपिर है (महापुरुषों की वाणी) गद्य एवं पद्य का अनुठा संग्रह है। सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद हैं। पुस्तक किसी एक सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व न करते हुए सबके लिए उपयोगी है। दृष्टान्तों के माध्यम से कहानियाँ अत्यन्त ही रोचक प्रतीत होती हैं। इसमें कुल १३७ कहानियाँ हैं जो अपने आपमें अनूठी एवं मनन योग्य है। आशा है पाठकगण इसे पढ़कर लाभ उठावेंगे।

लखनऊ जैन संग्रहालय की जैन प्रतिमाएँ, लेखक— डॉ० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, प्रकाशक— श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा केन्द्रीय कार्यालय— श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स कम्पाउण्ड, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ, संस्करण प्रथम २००२, आकार रायल, पेज ११६+६४, मूल्य १००/-

'लखनऊ जैन संग्रहालय की जैन प्रतिमाएँ' कला-इतिहास की एक उत्कृष्ट रचना है। इस पुस्तक में लेखक ने जैन धर्म की मूर्तियों का उद्भव और विकास, श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदायों की मूर्तियों में भेद के साथ-साथ जिन मूर्तियों पर एक विहंगम दृष्टि से प्रकाश डाला है। इसमें सभी तीर्थंकरों का ऐतिहासिक विवेचन एवं उनके प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों का सम्यक वर्णन है। कुल ११ अध्यायों के माध्यम से जैन प्रतिमाओं के प्रत्येक पक्ष को दर्शाने का यह सफल प्रयास है। अन्त में ६४ पृष्ठों का श्वेत श्याम चित्र इस ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करता है। इसे पढ़कर सामान्य सुधीजन के साथ-साथ शोधार्थी भी अवश्य ही लाभान्वित होंगे। शोधार्थियों के लिए यह पुस्तक नि:सन्देह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

अनुसंधान २०, सम्पादक— विजयशीलचन्द्रसूरि, प्रकाशक— कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य नवम जन्म शताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षण निधि, अहमदाबाद, प्राप्ति स्थान— आ० विजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर १२, भगतबाग, जैन नगर नयाशारदा मन्दिर रोड, अहमदाबाद ३८०००७, आकार डिमाई, पृष्ठ ११५, मूल्य ५०/-

'अनुसन्धान' प्राकृत भाषा की एक उत्कृष्ट पत्रिका है जिसमें समय-समय पर श्रमण परम्परा से सम्बन्धित उत्कृष्ट लेख प्रकाशित होते है। उपरोक्त संस्करण में श्री जयितलकसूरिकृत चतुर्हारावली चित्रस्वतः, श्रीयशोविजयगणिकृत आत्मसंवाद, केटलीक प्रकीर्ण लघु रचनाओ और 'वसो' न वसुधारा मन्दिर, टूंक नोध एवं कई स्तुति एवं कविताएँ भी प्रकाशित हैं। कुछ लेख संस्कृत एवं कुछ गुजराती में हैं।

काव्यानुशासनम्, आचार्य हेमचन्द्र विरचित, प्रकाशक— प्रवचन प्रकाशक पूना, प्राप्तिस्थान— भूपेश भायाणी, ४८८ रविवार पेठ, पूना ४११००२, संस्करण वि०सं० २०५८, आकार— डिमाई, पृष्ठ ८+४०८+२५, मूल्य ८०/-

दर्शन, व्याकरण एवं साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य हेमचन्द्र विरचित काव्यानुशासनम् साहित्य ग्रन्थ है। इसमें कुल ८ अध्याय हैं जिसमें काव्य प्रयोजन, काव्यलक्षण, रस, काव्यदोष, काव्य के गुण, अलंकारों का विवेचन, नायक-नायिका का चित्रण एवं दृश्य तथा श्रव्य काव्यों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। सूत्र के साथ उसकी संस्कृत व्याख्या भी है। संस्कृत के विद्वानों के लिए यह संग्रहणीय है।

समरादित्यसंक्षेप, रचनाकार— श्री प्रद्युम्नसूरि, प्रकाशक— प्रवचन प्रकाशन-पूना, प्राप्तिस्थान— भूपेश थायाणी ४८८ शनिवार पेठ, पूना ४११००२ संस्करण २००२ आकार— डिमाई, पृष्ठ १२४, मूल्य ९०/-

श्री प्रद्युम्नसूरिकृत समरादित्यसंक्षेप जैन साहित्य के उत्कृष्ट ग्रन्थों में से एक है। मूल ग्रन्थ प्राकृत में है, जो गद्य प्रधान है। प्रस्तुत ग्रन्थ संस्कृत में है और यह पद्य में है। कुल ९ अध्यायों में विभक्त इसके सम्पादक हर्मन जैकोबी हैं। पुन: सम्पादकत्व मुनि प्रशमरित विजय जी ने किया है। संस्कृत साहित्य के विद्वानों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी बन पड़ा है।

प्राचीन बौद्ध एवं जैन तीर्थ (स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में), लेखक— डॉ॰ राजेश कुमार सिंह, प्रकाशक— मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, टी-२१-ए, किला कॉलोनी, राजधाट वाराणसी, संस्करण प्रथम २००२, आकार— डिमाई, पृष्ठ २२४, मूल्य २५०/-

'प्राचीन जैन और बौद्ध तीर्थ' (स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में) को स्थापत्य कला की एक उत्कृष्ट रचनाओं में एक मानी जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस पुस्तक में लेखक ने जैन एवं बौद्ध तीर्थों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। इतिहास में मतभेदों का होना स्वाभाविक है। खासकर प्राचीन इतिहास में। किन्तु लेखक ने उचित सन्दर्भ द्वारा जैन एवं बौद्ध तीर्थों का सही मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक विद्वद्जनों के साथ शोधार्थियों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है।

— राघवेन्द्र पाण्डेय, शोधछात्र, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

जीवन क्या है? लेखक— डॉ० अनिल कुमार जैन, आकार— डिमाई, प्रकाशक— विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिरयागंज, नई दिल्ली ११०००२, प्रथम संस्करण २००२ ई०, पृष्ठ १०३; मूल्य— ३०/-

जीवन को तो सभी लोग जीते हैं, किन्तु जीवन के बारे में चर्चा गिने चुने लोग ही करते हैं। वास्तव में जीवन क्या है ? यह बहुत ही जटिल प्रश्न है। अधिकांश दार्शनिक विद्वानों ने जीवन के बारे में चर्चा की है, लेकिन डॉ० अनिल कुमार जैन ने जीवन की वैज्ञानिक व्याख्या, जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में की है। जैन दर्शन के छ: द्रव्यों. सात तत्त्वों एवं नौ पदार्थों की विस्तृत चर्चा में 'जीव' ही मुख्य होता है। संसार में जितने भी प्रकार के जीव पाये जाते हैं, उनका कल्याण कैसे हो उनका विकास कैसे हों, इत्यादि को ध्यान में रखकर जीव की व्याख्या करने के साथ ही जीवों की उत्पत्ति. उनका वर्गीकरण आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा करके उनके रहस्यों को समझाया गया है। लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि विज्ञान के लिए बने हुए रहस्यों (जैसे— बुढ़ापा, मृत्यु इत्यादि क्यों आती है) को जैन दर्शन में कर्मसिद्धान्त द्वारा उसकी वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा बतलाया गया है। लेखक ने यह सिद्ध करने का काफी अच्छा प्रयास किया है कि क्लोनिंग, जैनेटिकल इंजीनियरिंग आदि जिनके द्वारा जैन दर्शन के सिद्धान्तों को गलत कर दिया गया है, का खण्डन करके यह दिखलाया है कि जैनदर्शन द्वारा की गयी व्याख्या उचित है। इसलिए जीव विज्ञान व भौतिक विज्ञान के शोधार्थियों के लिए यह पुस्तक जिज्ञासा व प्रेरणाप्रद है। इस पुस्तक में कुछ अध्याय काफी महत्त्वपूर्ण हैं जैसे— विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सम्मूच्छीन-जन्म, क्लोनिंग व जैनेटिक के साथ कर्म सिद्धान्त, कर्म तथा उनका आत्मा के साथ सम्बन्ध।

निष्कर्ष के तौर पर लेखक ने पुस्तक के अध्ययन में तीन विचारों को स्पष्ट किया है—

- (क) वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन में किये गये निष्कर्षों, जैन दर्शन में पहले से ही वर्णन किया गया है।
- (ख) वे विषय जिनकी विज्ञान ने तो खोज की, लेकिन जैन दर्शन में उनका विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।
- (ग) विज्ञान के क्षेत्र में बने हुये रहस्य का जैन दर्शन में खुलासा किया गया है। उपरोक्त तीनों विचारों को केन्द्र बनाकर लेखक ने इस पुस्तक की रचना की जो सराहनीय है।

वीरप्रभु का अन्तिम सन्देश, प्रवचनकार मुनि यशोविजय जी; सम्पा०— डॉ॰ प्रीतम संघवी, आकार— डिमाई, पृष्ठ ६+५८, प्रकाशक— दिव्य दर्शन ट्रस्ट, १२९ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

३९, कलिकुण्ड सोसायटी, मफलीपुर चार रास्ता, धोलका— ३८७८१० (गुजरात राज्य) प्रथम आवृत्ति, वि०सं० २०५८, मूल्य— निःशुल्क।

इस पुस्तक का उद्देश्य समाज में फैल रहे महावीर के गलत सन्देश को रोकना है। इस पुस्तक में उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों की देशना की गयी है। जैन सांस्कृतिक परम्परा में उत्तराध्ययनसूत्र का महत्त्व उसी प्रकार है जिस प्रकार बौद्ध परम्परा में 'धम्मपद' और वैदिक परम्परा में 'भगवद्गीता'।

उत्तराध्ययनसूत्र एक जीवन्त शास्त्र है, अध्यात्मशास्त्र है। गागर में सागर की भाँति इसकी गाथाएँ अध्यात्मक रस से परिपूर्ण हैं। जैसा कि महाभारत के सम्बन्ध में कहा जाता है— 'प्रतिपर्व रसोदयम्'। प्रत्येक पर्व पर अधिकाधिक रस का अनुभव होता है। वैसे ही उत्तराध्ययन के विषय में यह कहा जा सकता है— 'प्रतिअध्ययनं अध्यात्मोदयः'।

उत्तराध्ययनसूत्र में अनेक शैलियाँ हैं। जैसे— कापिलीय, निमप्रव्रज्या, इषुकारीय एवं केशि-गौतमीय संवाद-प्रधान शैली इत्यादि। प्रभु वीर का अन्तिम सन्देश को अध्ययन की सुविधार्थ चार भागों में बाँटा गया है।

- (क) धर्म कथात्मक अध्ययन
- (ख) उपदेशात्मक अध्ययन
- (ग) आचारात्मक अध्ययन
- (घ) सिद्धान्तात्मक अध्ययन

उत्तराध्ययनसूत्र का प्रारम्भ 'विनय' से होता है विनय से ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा क्षमा, मृदुता, ऋजुता, सेवा आदि गुणों की पुष्टि होती है। प्रस्तुत पुस्तक का अन्तिम अध्याय 'जीवाजीवविभक्ति' है। संसार में जीव और अजीव ये दो तत्त्व ही मूल हैं। शेष तत्त्व इन्हीं दोनों के संयोग या वियोग से फलित होते हैं।

मुनि यशोविजय जी द्वारा विरचित यह ग्रन्थ सभी के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से भगवान् महावीर के प्रवचनों की यत्र-तत्र की गयी गलत व्याख्या को रोका जा सकता है। सम्यग्दर्शन, लेखक— प०पू० आचार्य विरागसागर जी, सम्पा०- प्रो० सुदर्शन लाल जैन, आकार— डिमाई, पृष्ठ १२६, प्रका०— श्री सम्यग्ज्ञान दि० जैन विराग विद्यापीठ, बतासा बाजार, भिण्ड (म०प्र०), प्रथम संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण २००२ ई०, मूल्य— ३५/-

आचार्य विरागसागर जी द्वारा रचित 'सम्यग्दर्शन' की समीक्षा करना अपने आप में एक धृष्टता है। किन्तु दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते खण्डन-मण्डन, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद करना दर्शनशास्त्र का विषय होता है। जैन-दर्शन के मोक्ष साधन में प्रथम 'सम्यग्दर्शन' ही है। जैन दर्शन में जिसे त्रिरत्न कहा गया है उसमें एक सम्यग्दर्शन भी है। तत्त्वार्थसूत्र १/१ में सम्यग्दर्शन की सुन्दर व्याख्या की गयी है। मुनिश्री द्वारा सम्यग्दर्शन जितना सरल है उतना ही जटिल भी है। सम्यग्दर्शन आत्मा का एक अनिर्वचनीय गुण (शक्ति) है जिसके प्रकट होने से सब कुछ निर्मल हो जाता है।

इस ग्रन्थ की रचना आचार्य विद्यासागर जी ने अपने विचारों व अनुभवों से की है। इस ग्रन्थ को मुनि जी ने आठ अध्यायों में विभक्त किया है। मुनि जी द्वारा विरचित ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन पर विशेष बल दिया है क्योंकि मोक्षार्थी का प्रथम मार्ग ही सम्यग्दर्शन है जो अन्य दो सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र का आधार स्तम्भ है। इसीलिए आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है—

### सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः

सम्यग्दर्शन के बिना न तो मुनि धर्म सम्भव है और न गृहस्थ धर्म। इसीलिए किविवर राजमल्ल जी ने पंचाध्यायी में कहा है — सम्यक्त्व से बढ़कर न तो कोई मित्र है, न बन्धु है और न सम्पत्ति है।

सम्यग्दर्शन का शाब्दिक अर्थ होता है— सत्य दृष्टि या यथार्थ दृष्टि। यही कारण है कि आचार्य जी ने इसी सम्यग्दर्शन को ही आधार बनाया जिससे कि समाज को एक सही मार्ग दर्शन मिल सके। निश्चित ही यह पुस्तक विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों व समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। आचार्य विरागसागर जी के इस प्रयास व्याख्या करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा।

अनेकान्तदर्पण, अंक ४, २००२ ई०, सम्पा०— डॉ० रतनचन्द्र जैन, आकार— डिमाई, प्रकाशक— अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, बीना (म०प्र०) ४७०११३.

अनेकान्त ज्ञानमन्दिर शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित अनेकान्तदर्पण-४ में विभिन्न विद्वत् जनों के लेखों का संकलन है। अनेकान्तदर्पण-४ के दो खण्ड किये गये है— १३१ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

### (क) आलेख खण्ड, (ख) अनेकान्त संस्थान।

आलेख खण्ड में जैन दार्शनिक प्रन्थों एवं जैन नीति मीमांसा की चर्चा की गयी है। इस खण्ड में सौम्य, युवा ब्रह्मचारी श्री संदीप जी 'सरल' द्वारा— 'जैन नैयायिक और जैन न्यायग्रन्थ- संक्षिप्त परिचय' काफी महत्त्वपूर्ण है। इसमें 'सरल' जी ने पूरे जैन न्याय ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय बहुत ही सरल भाषा में दिया है। इन्होंने अन्य अनुपलब्ध जैन तार्किक ग्रन्थ की भी चर्चा की है जो कि दर्शन जगत् के लिए वरदान कहा जा सकता है।

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध 'मनमोहन पंचशती' अज्ञात किव छत्रशेष की रचना को डॉ० गंगाराम गर्ग ने किव के ५०० किवत्त, सवैया और छप्पय छंदों में लिखित रचना को दर्शन, धर्म, भिक्त और श्रावकोचित आचार की सूक्तियाँ बोधगम्य, रोचक और सरल भाषा में व्यक्त किया है। इसी प्रकार और भी विद्वत्जनों जैसे— प्रो० रतनचन्द्र जैन द्वारा- पूजापाठ-संग्रहोक्त और शास्त्रोक्त पूजाविधियों में अन्तर, पं० लालचन्द 'राकेश' द्वारा- हरिवंशपुराण में विर्णित राजनीति, डॉ० नीलम जैन द्वारा- 'आधुनिक तकनीक से करना होगा श्रुत संरक्षण' सभी आलेख पठनीय हैं।

अनेकान्त संस्थान खण्ड में अनेकान्त ज्ञानमन्दिर शोध संस्थान, बीना का परिचय और संस्थान द्वारा किये गये कार्यों का लेखा-जोखा व उनके द्वारा प्रकाशित प्रन्थों की सूची है।

मिला प्रकाश: खिला बसन्त, लेखक— राष्ट्रसंत आचार्य विजय जयंतसेन सूरि, आकार— डिमाई, पृष्ठ १०+३५५, प्रकाशक— श्री राजराजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, शेखनो पाडो, रिलीफ रोड, अहमदाबाद (गुजरात), प्रथम संस्करण वि०सं० २०५६, मूल्य ५० रुपये।

'मिला प्रकाश: खिला बसन्त', गणधरवाद पर विशिष्ट ग्रन्थ है। जिस प्रकार जैनियों में तीर्थंङ्करों की एक परम्परा है, उसी प्रकार गणधरों की भी एक परम्परा है। तीर्थंङ्करों के प्रधान शिष्य को गणधर कहा जाता है। गणधर का शाब्दिक अर्थ है— जो गण का रक्षण करता है अथवा गण को नियन्त्रित करता है, प्रेरित करता है, जो अनुपम ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि को धारण करता है, वही गणधर कहलाता है।

गणधर का मुख्य कार्य अपने समय के तीर्थङ्करों की वाणी की व्याख्या करना, विचारों का संकलन करके व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करना। वर्तमान आचार्य परम्परा भगवान् महावीर स्वामी के गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी के नाम से चल रही है। भगवान् महावीर स्वामी के प्रधान और प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे।

आचार्य विजय जयंतसेनसूरि ने इस ग्रन्थ को चार अध्यायों में विभक्त किया है— प्रथम अध्याय में गणधरवाद का परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय में संशयों की पृष्ठभूमि को वैदिक परम्परा की दृष्टि से, तीसरे अध्याय में प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह गणधरों के व्यक्तित्व का परिचय एवं चतुर्थ अध्याय को सबसे महत्त्वपूर्ण अध्याय कह सकते है कि इसमें ग्यारहों गणधरों के संशय का विस्तारपूर्वक समाधान किया गया है जो कि काफी कठिन कार्य है। आचार्य जी द्वारा किया गया यह प्रयास सचमुच में सराहनीय एवं जैन धर्म समुदाय के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अन्य धर्म सम्प्रदाय के लोगों के लिए एवं दर्शन के शोधछात्रों के लिए महत्त्व रखती है।

प्राकृतिवद्या, वर्ष १३ अंक ४, वर्ष १४ अंक १, जनवरी-जून २००२, प्रधान सम्पादक- प्रो० राजाराम जैन, आकार- डिमाई, पृष्ठ २१६, प्रका०- कुन्दकुन्द भारती, १८वीं, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली ११००६७, मूल्य १५ रुपये।

श्री कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन) जैन शोध-संस्थान द्वारा प्रकाशित इस शोध पत्रिका के आलेखों का संकलन है। जो वैशालिक महावीर पर आधारित है। इसमें सम्पादक द्वारा प्रस्तुत लेख भगवान् महावीर के उपदेशों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता आज के समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसी तरह श्रीमती रंजना जैन का दार्शनिक लेख— 'सांख्य दर्शन, परम्परा और प्रभाव' काफी सराहनीय है। अन्य विद्वानों में प्रो० (डॉ०) शिश प्रभा जैन जी का लेख— कुं 'सम्राट अशोक के शिलालेखों में उपलब्ध महावीर-परम्परा के पोषक-तत्त्व' बहुत ही व्यवस्थित व परिमार्जित है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि कुन्दकुन्दभारती संस्थान द्वारा प्रकाशित यह ग्रन्थ विशेष रूप से इतिहास एवं दर्शन के शोधार्थियों के लिए उपयोगी है।

आराधना प्रकरण, रचनाकार— श्री सोमसूरि, सम्पा०— डॉ० जिनेन्द्र जैन एवं श्री सत्यनारायण भारद्वाज, प्राकृत एवं जैनागम विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, आकार- डिमाई, पृष्ठ ८+५९, प्रका०— जैन अध्ययन एवं सिद्धान्त शोध संस्थान द्वारा श्रद्धा इलेक्ट्रिकल्स, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर (म०प्र०) प्रथम संस्करण २००२, मूल्य ७५/- रुपये।

प्रकरण ग्रन्थों की परम्परा में आराधना प्रकरण लगभग १२वीं शताब्दी में श्री सोमसूरि द्वारा विरचित एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण ग्रन्थ माना गया है। इस ग्रन्थ में कुल ७० गाथाओं की चर्चा है। इस प्रकरण ग्रन्थ की रचना निर्वाण प्राप्त करने के लिए की गयी है। रचनाकार ने इसमें और दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप पर बल दिया है।

### १३३ : श्रमण, वर्ष ५४, अंक १-३/जनवरी-मार्च २००३

आराधना प्रकरण में सर्वप्रथम भगवान् महावीर को प्रणाम करते हुये प्रतिज्ञा की है कि मैं शास्त्र सम्मत आराधना के सम्पूर्ण स्वरूप को कहता हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ में पंचपरमेष्ठियों के स्वरूप का विवेचन करते हुये रचनाकार ने आत्मकल्याण एवं मंगल की कामना व्यक्त की है।

श्री सोमसूरि द्वारा विरचित आराधना प्रकरण का विषय चरणानुयोग से सम्बन्धित है। 'आराधना' शब्द की निष्पत्ति 'आंडू' उपसर्गपूर्वक 'राध संसिद्यो' धातु से भाव में ल्युट् एवं स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय करने पर होती है, जो प्रसन्नता, संतोष, सेवा, पूजा, उपासना, अर्चना, सम्मान, भिक्त आदि का वाचक है। प्रभु, गुरु, इष्ट्र, परमात्मा या किसी भी पूज्य की सेवा और भिक्त की जाती है, भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही आराधनर की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही है। सनातन, जैन और बौद्ध तीनों ही धाराओं में अपने-अपने इष्ट के देवी-देवताओं की आराधना की गयी है।

श्री सोमसूरि द्वारा विरचित ग्रन्थ निश्चित तौर पर अपने आप में एक महान ग्रन्थ है जिसके अध्ययन व मनन से प्रत्येक व्यक्ति समाज और राष्ट्र का विकास सम्भव है।

— डॉ॰ धर्मेन्द्र कुमार सिंह गौतम, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

# 'श्रमण' पाठकों की दृष्टि में

श्रमण का जुलाई-दिसम्बर २००२ संयुक्तांक प्राप्त कर प्रसन्नता का अनुभव हुआ। यह अंक भी अपने प्रकाशन की परम्परा की श्लाघनीय गरिमा का संवाहक है। इसमें प्रकाशित आलेख शोधोपादेयता की महिमा से मण्डित हैं।

— विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेव, पटना

श्रमण जुलाई-दिसम्बर २००२ का अंक मिला, धन्यवाद। काफी अच्छे और शोधपरक लेख हैं। कु० मधुलिका का आलेख 'जैनाचार्यों का छन्द शास्त्र को अवदान' पढ़ा। काफी परिश्रम के साथ शोधकार्य किया है, उन्हें मेरा धन्यवाद और आशीर्वाद। — हजारीमल बांठिया, बांठिया हाउस, हाथरस (उ०प्र०)

# NO PLY, NO BOARD, NO WOOD.



# ONLY NUWUD.

#### INTERNATIONALLY ACCLAIMED

Nuurud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, bomes & industry. As cellings,

#### DESIGN FLEXIBILITY

flooring, furniture, mouldings, panalling, doors, windows... an almost infinite variety of

#### VALUE FOR MONEY

woodwork. So, if you bave woodwork in mind, just think NUWUD MDF.

HUCHEM &

E-46/12, Okhla Industrial Area, Phase II, New Delhi-110 020 Phones: 632737, 633234, 6827185, 6849679 Tix: 031-75102 NUWD IN Telefax: 91-11-6846748

(5)



The one wood for all your woodwork

MARKETING OFFICES: • AHMEDABAD: 440672, 469242 • BANGAL ORE: 2219219

BHOPAL: 552760 • BOMBAY: 8734433, 4937522, 4952648 • CALCUTTA: 270549
 CHANDIGARH: 603771, 604463 • DELHI: 632737, 633234, 6827185, 6849679

• HYDERABAD: 226607 • JAIPUR: 312636 • JALANDHAR: 52610, 221087

• KATHMANDU: 225504. 224904 • MADRAS: 8257589, 8275121